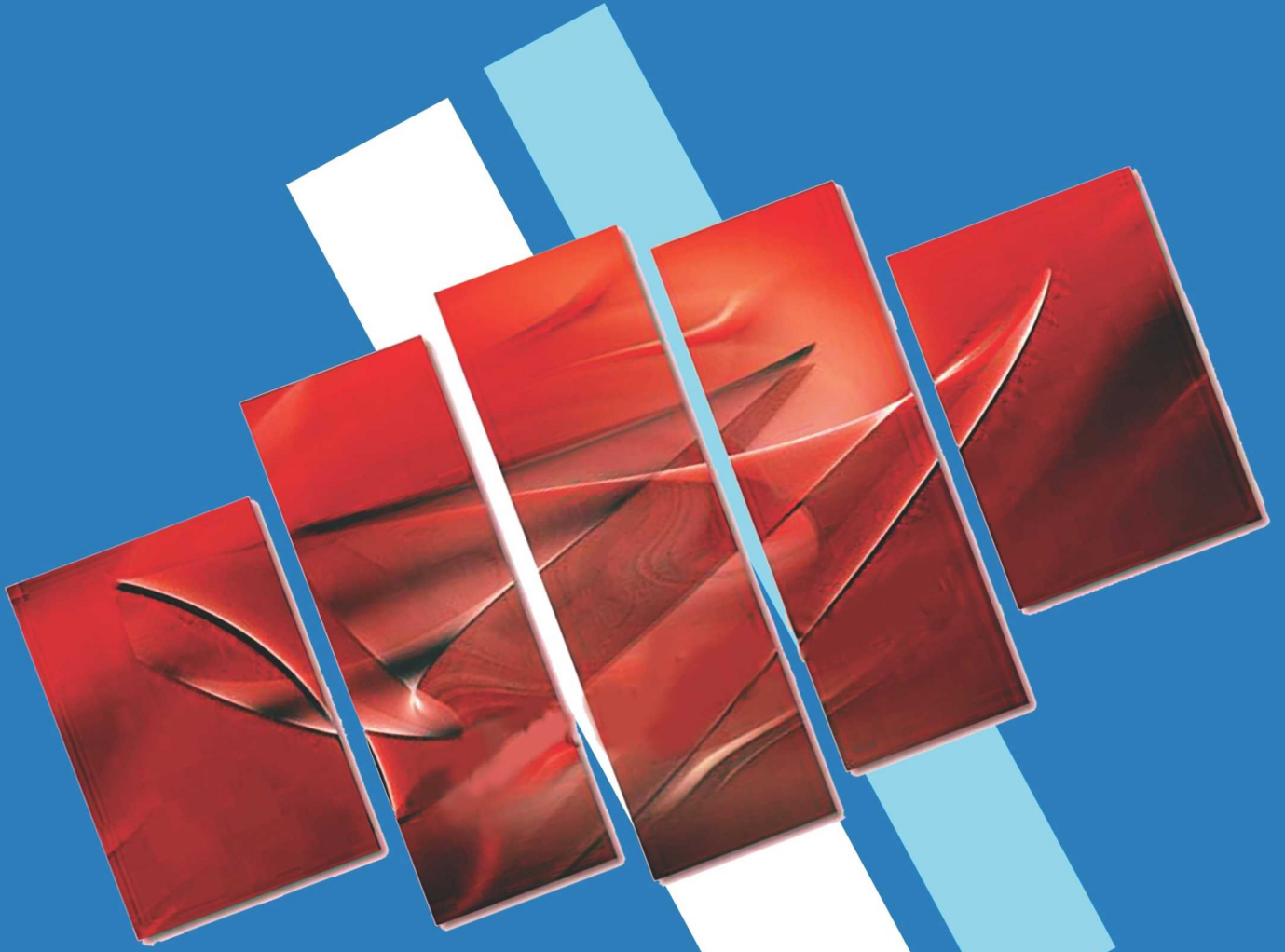


# मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान

वर्ष 1 अंक 3 • त्रैमासिक अप्रैल-जून 2009 मूल्य : 10 रुपये



क्यों है ऐसा पाकिस्तान?  
मन्दी की मार से छिनते रोज़गार  
टाटा की काली करतूतें और उसकी नैनो



## पूँजीवादी समाज के प्रति

### ● गजानन माधव मुक्तिबोध

इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि  
इतना ज्ञान, संस्कृति और अन्तःशुद्धि  
इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति  
यह सौन्दर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर-भक्ति  
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छन्द—  
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्वन्ध  
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुन्दर जाल—  
केवल एक जलता सत्य देने टाला  
छोड़ो हाथ, केवल घृणा औ' दुर्गन्ध  
तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अन्ध  
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध  
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध  
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र  
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र  
तेरे हास में भी रोग-कृमि हैं उग्र  
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्रा  
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक  
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक  
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ  
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

## आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

➤ 'आह्वान' विपर्यय के इस कठिन अँधेरे दौर में क्रान्ति के नये संस्करण की तैयारी के लिए युवा वर्ग का आह्वान करता है। यह एक नूतन क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन का शंखनाद करता है। यह नई क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति के निर्माण के लिए, उसकी मार्गदर्शक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और इतिहासबोध की समझ कायम करने के लिए और भारतीय क्रान्ति के रास्ते की सही समझदारी कायम करने के उद्देश्य से विचार-विनिमय और बहस-मुबाहसे के लिए आम जनता के विवेकशील बहादुर युवा सपूतों को आमंत्रित करता है। 'आह्वान' क्रान्ति की आत्मा को जागृत करने की जरूरत का अहसास है। यह एक नई क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की तड़प की अभिव्यक्ति है। लोग यदि लोहे की दीवारों में कैद नशे की गहरी नींद सो रहे हैं, तब भी हमें लगातार आवाज लगानी ही होगी। नींद में घुट रहे लोगों के कानों तक लगातार पहुँचती हमारी आवाज कभी न कभी उन्हें जगायेगी ही। भूलना नहीं होगा कि एक चिंगारी सारे जंगल को आग लगा सकती है। 'आह्वान' ऐसी ही एक चिंगारी बनने को संकल्पबद्ध है।

➤ 'आह्वान' जिन्दगी के इस दमघोंटू माहौल को बदलने के लिए तमाम जिन्दा लोगों का आह्वान करता है। यह उन सभी का आह्वान करता है जो सही मायने में नौजवान हैं। जिनमें व्यक्तिगत स्वार्थ, कायरता, दुनियादारी, धन लिप्सा, कैरियरवाद और पद-ओहदे-हैसियत-मान्यता की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा के खिलाफ लड़ने का माद्दा और जिद है, जिनकी रगों में उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। जो न्याय, सौन्दर्य, प्रगति और शौर्य के पुजारी हैं। 'आह्वान' जनता की सेवा में लग जाने के लिए, मेहनतकश अवागम में धुलभिलकर उसकी मुक्ति का परचम थाम लेने के लिए ऐसे ही नौजवानों का आह्वान करता है। सामाजिक क्रान्तियों की कठिन शुरुआत की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए पहले जनता के बहादुर युवा सपूत ही आगे आते हैं। इतिहास के रथ के पहिए नौजवानों के उष्ण रक्त से लथपथ हुआ करते हैं।

## इस अंक में

पाठक मंच	2
अपनी ओर से	
एक और चुनाव सम्पन्न लेकिन सवाल हमेशा की तरह बरकरार है	3
शिक्षा जगत	
दिल्ली विश्वविद्यालय में सेमेस्टर प्रणाली लागू	15
विशेष लेख	
क्यों है ऐसा पाकिस्तान?	16
सामयिकी	
मन्दी की मार से छिनते रोजगार	7
यह आम जनता के प्रतिनिधियों का चुनाव है या...	11
दिल्ली मेट्रो रेल के कामगारों का अपनी कानूनी माँगों के लिए संघर्ष	23
समाज	
टाटा की काली करतूतों और उसकी नैनो	9
स्माइल पिंकी: मुस्कान छीनने और देने का सच	26
स्कूल चले हम नेता बनने!!!	40
विरासत	
भारतीय भौतिकवादी परम्परा के आधुनिक चिन्तक और सांस्कृतिक सेनापति	28
गतिविधि बुलेटिन	32-34
जनचेतना द्वारा क्रान्तिकारी प्रगतिशील साहित्य की पुस्तक प्रदर्शनी ● दिशा व नौभास द्वारा पांच-दिवसीय युवा रचनात्मकता शिविर का आयोजन ● दिल्ली विश्वविद्यालय में नये सत्र की शुरुआत पर 15-दिवसीय सहायता डेस्क ● स्त्री मुक्ति लीग द्वारा अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस पर जनसभा का आयोजन ● शहीदे-आज़म भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के 78वें शहादत दिवस के मौके पर दिशा व नौभास का दो-दिवसीय कार्यक्रम ● देश के विभिन्न हिस्सों में चुनाव का भण्डाफोड़ अभियान	
सकर्मक विमर्श	36-39
माया कोडनानी और जयदीप पटेल की गिरफ्तारी और गुजरात नरसंहार पीड़ितों को इंसाफ ● पूँजीवाद का ढकोसला और डार्विन का सिद्धान्त ● भगवा ब्रिगेड का फरमान वरुण गाँधी की जुवान	
विश्व पटल पर	
नेपाली क्रान्ति: महत्व और भविष्य	13
नई कलम से	
लखविन्दर की तीन कविताएँ	35

## मुक्तिकामी छात्रों युवाओं का आह्वान

वर्ष 1 अंक 3  
अप्रैल-जून 2009

सम्पादक  
अभिनव

सह-सम्पादक  
कविता

सज्जा  
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य  
दस रुपये

वार्षिक सदस्यता: 50 रुपये  
द्विवार्षिक सदस्यता: 100 रुपये  
पंचवर्षीय सदस्यता: 250 रुपये  
आजीवन सदस्यता: 2000 रुपये

सम्पादकीय कार्यालय : बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली, फोन : (011) 65976788, 9999379381

ईमेल : ahwan.editor@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक अभिनव सिन्हा द्वारा रुचिका प्रिण्टर्स, 1/10665, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 से मुद्रित कराकर बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094 से प्रकाशित किया।

## पाठक मंच

प्रिय साथी,

नमस्कार, “मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान” पत्रिका का प्रवेशांक मिला। मानवीय मूल्यों के लिए इंकलाब के लिए समर्पित इस पत्रिका के प्रति मैं समर्पित हूँ। इसके तूणीर के बाण, जब यह ‘आह्वान’ के रूप में थी, निरन्तर मर्म को बेधती रही थी और इस क्रम को इस प्रवेशांक ने भी जारी रखा है। उष्ण खून की इस सौगात और फड़कती उर्जस्वित भुजाओं के आमंत्रण ने हर पाठक को अपने मुक्तिकामी आह्वान के इंकलाबी सैन्य दस्ते में सम्मिलित करने का आह्वान किया है। इस दस्ते में मैं भी शामिल हूँ।

शुरुआती दौर में पत्रिका की दस प्रतियाँ मुझे भी भेज दें तथा बिहार में पत्रिका प्राप्ति का पता मेरे नाम भी कर दें, मैं इस दिशा में पत्रिका के प्रचार-प्रसार का कार्य करता रहूँगा।

इस अंक में संकलित आलेख, सूचनाएँ और कविताएँ क्रान्ति की अदभुत चिंगारी लिये हुए हैं। यह मानवता के हित एक नये मानव के निर्माण के साथ-साथ प्रतिरोधी दानवीय शक्तियों का खात्मा भी करेगी। यह देश के युवाओं को एक नई जीवन दृष्टि, एक सही इतिहासबोध और मानवीय समझ देगी। हमारी संकल्प दृढ़ता और विस्तृत कर्तव्य-बोध ही हमारी सफलता का कारक होगा, हमारी यह आकांक्षा है।

‘आज की कविताएँ’ पत्रिका विगत कुछ वर्षों से अर्थाभाव के कारण स्थगित है। पुनः प्रकाशन की योजना में हूँ।

अपनी कुछ प्रकाशित पुस्तकें निकट भविष्य में कोरियर से भेजना चाहता हूँ।

## धर्म के नासूर

मुझे डर लगने लगा है अब  
मन्दिरों से, मस्जिदों से, गिरजाघरों से,

आदमी को जिबह करते  
इन कसाईखानों से

आदमी को आतंकी, दंगाई  
और उन्मादी बनाती  
इन अंधगुफाओं से,

मुझे और भी  
डर लगने लगता है  
जब देखता हूँ  
रोज-रोज बढ़ रहे  
धर्म के इन नासूरों की संख्या को,

जो पैदा होते रहे हैं  
कराहती संततियों की कब्र से,

मेरा डर और भी बढ़ने लगता है  
जब देखता हूँ हुजूम  
आदमी की शक्ल वाली  
भेड़ों की यहाँ  
और मीडिया भी परेशान रहती है  
फहराने को ध्वज इनका  
आकाश में,  
डर तो मुझे सबसे अधिक  
तब लगता है  
जब लोकतंत्र भी यहाँ चुपचाप  
गिरवी रह जाता है,

पता नहीं कब होगा  
आदमी का इंकलाब,  
अपने ही गढ़े  
दुर्दशा के इन कारकों  
के खिलाफ़।

मंगलकामनाओं के साथ  
भवदीय

डॉ. गिरिजाशंकर मोदी

सम्पादक - ‘आज की कविताएँ’

शब्द-सदना

सिकन्दरपुर, मिरजानहाट, भागलपुर (बिहार)

संयोगवश ‘आह्वान’ का जनवरी-मार्च 09 का अंक मिला। पढ़ते ही स्पष्ट हो गया कि ‘आह्वान’ एक उद्घोष है इस खूनी पूँजीवादी व्यवस्था के अन्त का। इसके बाद ‘आह्वान’ के जितने भी पहले के अंक मिल पाये वे सब पढ़े। आज के दौर में जब क्रान्ति पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है तो ऐसे समय में ‘आह्वान’ का अपने पैनेपन के साथ बना रहना सराहनीय है। ‘आह्वान’ के अन्दर हमें लगातार इस पूँजीवादी व्यवस्था तथा उसके पैरोकारों के ढके हुए चेहरों को नग्न करना होगा, वो भी बिना किसी रियायत के। ‘आह्वान’ में इतिहास के जन-संघर्षों का ब्यौरा लगातार बने रहना चाहिए तथा दर्शन व साहित्य का प्रकाशन भी लगातार जारी रहना चाहिए। क्योंकि साहित्य-दर्शन और राजनीति दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं और दोनों के बीच द्वन्द्वत्मक सम्बन्ध हमेशा मौजूद रहता है। हम हमेशा इस क्रान्तिकारी कदम में पूर्ण रूप से आपके साथ हैं एवं यथासम्भव सहयोग जारी रखेंगे।

अजीत  
ग्रेटर नोएडा

# एक और चुनाव सम्पन्न लेकिन सवाल हमेशा की तरह बरकरार है !

पन्द्रहवीं लोकसभा के लिए आम चुनावों का समापन हो गया और एक बार फिर कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार बनी। इस बार कांग्रेस की स्थिति इस गठबन्धन में और मजबूत हो गयी है और वह अपनी शर्तें रखने की स्थिति में पहुँच गयी है। कांग्रेस ने कई राज्यों में काफ़ी अच्छा प्रदर्शन किया और अपने वोटों का विस्तार किया। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में कांग्रेस एक बार फिर पाँव जमाने में सफल रही। लेकिन इस सभी आँकड़ों के बीच यह बात कभी नहीं भुलाई जा सकती है कि इस बार भी करीब कुल 55 फीसदी वोट ही पड़े। 45 प्रतिशत लोगों ने वोट डालने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। वैसे तो यह भी सोचने का मुद्दा है कि जिन 55 फीसदी लोगों ने वोट डाला उनमें से कितनों ने किसी पार्टी की नीतियों और विचारधारा पर यकीन करके वोट डाला है। साथ ही, हम यह भी जानते हैं कि हमारे देश में किस तरह से वोट डाले और डलवाये जाते हैं। लेकिन इस पर यहाँ विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि सरकार और चुनाव आयोग ने लोगों को वोट डालने के लिए प्रेरित करने के लिए प्रचारों की बाढ़-सी ला दी, लेकिन इससे भी कोई विशेष फ़र्क नहीं पड़ा। इसका कारण साफ़ है। बहुसंख्यक जनता का इस पूँजीवादी जनवाद और उसमें मौजूद तमाम पूँजीवादी पार्टियों पर कोई भरोसा नहीं है। यह बात तमाम पार्टियों के नेताओं ने भी मानी है। इस बात पर पूँजीवादी पार्टियों के विचारकों और नेताओं ने काफ़ी चिन्ता जताई कि वोटों का उन पर से लगातार विश्वास खत्म हो रहा है और इस विश्वास को पुनः पैदा करने के लिए कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। लेकिन ऐसी चिन्ताओं का कोई लाभ नहीं है। क्योंकि पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग की सेवा करते हुए यह पार्टियाँ आम मेहनतकश जनता का भरोसा नहीं जीत सकती हैं। और पूँजीपतियों की चाकरी के अलावा वे और कुछ कर नहीं सकतीं। जनता का विश्वास इस पूँजीवादी जनतन्त्र पर क्यों नहीं है इसे चन्द आँकड़ों से ही समझा जा सकता है।

इस लोकसभा चुनाव में पूरे देश भर में करीब 71 करोड़ 40 लाख मतदाता थे। इसमें से करीब 55 फीसदी ने ही वोट डाला। चुनाव आयोग ने चुनाव का बजट 1120 करोड़ रुपये तय किया था। लेकिन *सेण्टर फॉर मीडिया स्टडीज़* के आँकड़ों के अनुसार चुनाव खत्म होने तक चुनाव की पूरी प्रक्रिया पर करीब 90 अरब रुपये खर्च हो चुके थे। गौरतलब है कि 1952 में हुए पहले आम चुनावों में कुल 10 करोड़ रुपये खर्च हुए थे। एक ओर भारत की आम जनता गरीबी के गर्त में गिरते-गिरते यहाँ तक पहुँच गयी कि आज 77 फीसदी आम भारतीय जनता 20 रुपये या उससे कम की प्रतिदिन आय पर जी रही है, और दूसरी ओर पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के चुनाव के इस जलसे पर अरबों-अरब रुपये फूँक दिये जाते हैं। वह भी तब जबकि अलग-अलग चुनावी पार्टियों की नीतियों में कहीं कोई फ़र्क नहीं है। उन्नीस-बीस के फ़र्क से नीतियाँ वही हैं। इस चुनाव में दलितों की मसीहा बनने वाली मायावती की पार्टी के 50 उम्मीदवार करोड़पति थे। सबसे अमीर उम्मीदवार बसपा का ही था—पश्चिमी दिल्ली से दीपक भारद्वाज, जिन्होंने अपनी परिसम्पत्ति 6.04 अरब रुपये घोषित की। कांग्रेस, भाजपा और अन्य दलों में भी भारी संख्या में करोड़पति थे। चुनाव आयोग ने हर उम्मीदवार के लिए चुनाव खर्च की सीमा 25 लाख रुपये तय की थी। लेकिन वास्तविकता यह थी कि हर उम्मीदवार ने इससे करीब 8 गुना अधिक खर्च किये। स्वयं चुनाव आयोग के अधिकारी वाई. एम. कुरेशी ने माना है कि चुनाव आयोग चुनावों में काले धन के उपयोग को रोकने में असफल रहा है। इस चुनाव में कुल 1418 उम्मीदवार खड़े हुए जिनमें से 193 करोड़पति थे। और लखपतियों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। विजयवाड़ा से कांग्रेस के उम्मीदवार राजगोपाल की परिसम्पत्ति पिछले चुनावों के दौरान 9 करोड़ रुपये थी जो इस चुनाव में बढ़कर 229 करोड़ रुपये हो गई। इन आँकड़ों से साफ़ पता चलता है कि संसद में धनपतियों

की सीधी भागीदारी बढ़ी है। जो वर्ग पहले बाहर बैठ कर यह तय करता था कि कौन उसके हितों की सेवा करे, उसे अब यह लगने लगा है कि संसद में बैठकर भी अच्छा धन्धा किया जा सकता है और साथ ही अपने वर्ग हितों की देखरेख भी अधिक कुशलता से की जा सकती है। जो चोर-लुटेरे-अपराधी पहले अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति में हस्तक्षेप करते थे वे अब संसद-विधानसभाओं में सीधा प्रतिनिधित्व चाहते हैं और वह उन्हें मिल भी रहा है। काले धन और सफेद धन के बीच की विभाजक रेखा के धूमिल होने के साथ यह तो होना ही था। नेहरू के काल में पूँजीवादी राजनीति करने वाले जितनी लाज-शर्म रखते थे वह अब हवा हो गई है और अपराधी पूँजीवादी राजनीति का सच अपने नंगे रूप में जनता के सामने है।

ऐसे में यह लाज़िमी ही है कि जनता का इस पूँजीवादी व्यवस्था और जनतन्त्र से भरोसा उठ चुका है। किसी क्रान्तिकारी विकल्प की गैर-मौजूदगी में जनता का एक हिस्सा कभी इस तो कभी उस पार्टी को वोट देता है। जनता एक दूसरा हिस्सा यह मानता है कि विकल्प तो कोई नहीं है मगर फलों उम्मीदवार मेरी जाति या मेरे धर्म का है इसलिए उसे वोट दे

दिया जाय। वोटों के एक अच्छे-खासे हिस्से का वोट खरीदा जाता है और भारत जैसे ग़रीब देश में निर्धनतम तबके से आने वाले लोग सौ-दो सौ रुपये के लिए अपने वोट को बेच भी देते हैं। वे भी जानते हैं कि साँपनाथ आए या नागनाथ, उनके जीवन में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं आने वाला है। ऐसे में वे वोट को बेच देते हैं। इस बार के चुनाव में जगह-जगह तमाम छोटे-बड़े नेता वोट के बदले नोट बाँटते पकड़े भी गये। लेकिन उन पर कोई कार्रवाई नहीं होती क्योंकि कानून में ही इतने पेंच होते हैं कि वे साफ़ बच निकलते हैं। भाजपा नेता जसवन्त सिंह और सपा सुप्रीमो मुलायम सिंह यादव के बेटे अखिलेश यादव ऐसे नेताओं में शामिल थे। इसके अतिरिक्त, चुनाव आयोग की तमाम हिदायतों के बावजूद जीत के लिए बौराई भाजपा ने हर जगह आक्रामक तरीके से हिन्दुत्व का पत्ता चलाने की कोशिश की। लेकिन वह बुरी तरह से नाकाम रही। जनता इस पत्ते से अभी ऊबी हुई है और भाजपा के पास कोई सकारात्मक कार्यक्रम नहीं था। उसका घोषणापत्र तक कांग्रेस के जवाब में आया घोषणापत्र प्रतीत हो रहा था। कुल मिलाकर पूरे चुनाव में इस बार जमकर नौटंकी हुई और पूँजीवादी राजनीति मज़ाकिया हद तक नंगी होकर जनता के सामने आ गई।

लेकिन इन सबके बावजूद यह मानना कि यह स्थिति अपने आप बदल जाएगी, एक मूर्खता होगी। चीज़ें कभी अपने

आप नहीं बदलतीं। उन्हें प्रयास करके बदलना पड़ता है। और इसके लिए बल लगाने की ज़रूरत होती है। आज ऐसी कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी शक्ति देश में मौजूद नहीं है जो जनता को इस पूरी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने और एक मानव-केन्द्रित व्यवस्था बनाने के लिए जागृत, गोलबन्द और संगठित कर सके। ऐसे में जनता विकल्पहीनता में इस या उस पार्टी के बीच झूलती रहती है। देश के अलग-अलग हिस्सों में जनता के कुछ हिस्से कभी विद्रोह में उतरते भी हैं तो यह व्यवस्था ऐसे बिखरे प्रयासों को कुचल देती है। जब तक पूरे देश के पैमाने पर ऐसी किसी शक्ति को खड़ा नहीं किया जाता तब तक यह गोरखधन्धा चलता रहेगा।

अलग-अलग चुनावी पार्टियों के चुनावी घोषणापत्र पर निगाह डालते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सभी चुनावी दलों का कार्यक्रम और नीतियाँ उन्नीस-बीस के फ़र्क के साथ एकसमान ही हैं। कांग्रेस ने अपने घोषणापत्र में 3 रुपये किलो चावल या गेहूँ 25 किलोग्राम की मात्रा में ग़रीब परिवारों को देने का वायदा किया। इसके अतिरिक्त, मध्यम वर्ग को लुभाने के लिए कर में कटौती करने और कोई नया कर न

लगाने की बात की गई। किसान वर्ग को सन्तुष्ट करने के लिए अधिक सब्सिडी और कर्ज़ पर ब्याज़ माफ़ करने का वायदा किया गया। कुल मिलाकर कांग्रेस का घोषणापत्र मन्दी के समय कीन्सियाई कल्याणकारी राज्य के नुस्खे का वायदा करने वाला घोषणापत्र है जिसमें लोकलुभावन आश्वासनों की भरमार थी। कांग्रेस के घोषणापत्र में कीन्सियाई नुस्खों के साथ उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों का तालमेल करने की कोशिश भी की गई है। संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार बनने के बाद राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील के अभिभाषण में पहले 100 दिनों के लिए सरकार की जिन प्राथमिकताओं का उल्लेख किया गया उसमें भी मन्दी के दौर में उजड़ने वाली आम मेहनतकश जनता के असन्तोष को ठण्डा करने के लिए कल्याणकारी नीतियों की भरमार थी। कांग्रेस समझ रही है कि आज के संकटग्रस्त समय में पूँजीवाद की रक्षा के लिए ऐसी कल्याणकारी नीतियों की एक हद तक आवश्यकता है। साथ ही, कांग्रेस ने आतंकवाद और नक्सलवाद से निपटने के लिए नया सशस्त्र बल बनाने, आतंकवाद निरोधक कानून को सख्ती से लागू करने की बात भी अपने घोषणापत्र में की है।

भाजपा का घोषणापत्र कांग्रेस के घोषणापत्र के कुछ दिनों बाद आया। इसे भाजपा के नेता मुरली मनोहर जोशी के नेतृत्व में तैयार किया गया। ऐसा लगता है कि भाजपा के बुढ़ा गये नेताओं की बुद्धि घिस गई है और विवेक चुक गया है। घोषणापत्र

पढ़ते ही लगता है यह कांग्रेस के घोषणापत्र की नुस्तेवार नकल और जवाब है। जहाँ कांग्रेस ने गरीब परिवारों को 3 रुपये किलो चावल 25 किलोग्राम की मात्रा में देने का वायदा किया, वहीं भाजपा की दुकान इसे 2 रुपये किलो 35 किलोग्राम की मात्रा में देने का वायदा कर रही थी। कांग्रेस ने निम्न करों की बात की तो भाजपा ने भी मध्यम वर्ग की पार्टी होने के अपने दावे को मज़बूत करने के लिए और अधिक निम्न करों का वायदा किया। कांग्रेस ने उच्च सब्सिडी की बात की तो भाजपा ने भी उच्च सब्सिडी की बात की। कांग्रेस ने किसानों के कर्ज़ का ब्याज़ माफ़ करने का वायदा किया तो भाजपा ने कर्ज़ को ही माफ़ कर देने का लुकमा उछाला। साथ में, भाजपा ने अपना पारम्परिक मुद्दा आतंकवाद और हिन्दुत्व भी उछाला। लेकिन हाल में संघी आतंकवादियों के पकड़े जाने, कांग्रेस द्वारा कन्धार प्रकरण के भाजपा सरकार द्वारा सम्भाले जाने की निरंतर आलोचना, भाजपा सरकार के काल में हुए आतंकवादी हमलों का प्रचार और मुम्बई हमलों के बाद यूपीए सरकार की कार्यवाही के प्रचार ने भाजपा के आतंकवाद के मुद्दे को फीका कर दिया। हिन्दुत्व के मुद्दे से जनता बुरी तरह ऊबी हुई थी। आडवाणी प्रधानमन्त्री बनने के आखिरी चांस को भुनाने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार थे। वरुण गाँधी से भड़काऊ भाषण दिलवाया गया। फिर भी खास असर नहीं दिखा तो देश के तमाम हिस्सों कट्टर हिन्दुत्व की लाइन पर प्रचार करने के लिए नरेन्द्र मोदी को घुमाया गया। लेकिन देश में तो क्या होता गुजरात में ही भाजपा की सीटें घट गई और कांग्रेस को अच्छा-खासा फ़ायदा मिला।

जहाँ कांग्रेस का घोषणापत्र कीन्सियाई नुस्खों और भूमण्डलीकरण की नीतियों के बीच एक सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता दिखता है, वहीं वामपंथी गठबन्धन का घोषणापत्र खुले तौर पर कीन्सियाई नुस्खों की हिमायत करता है। अपने घोषणापत्र से संसदीय वामपंथियों ने एक बार फिर साबित किया कि वे पूँजीवादी व्यवस्था की आखिरी सुरक्षा पंक्ति हैं। उनके घोषणापत्र में मन्दी के खतरे को विशेष रूप से चिन्हित किया गया है और कुछ ऐसे नुस्खे सुझाये गये हैं जिससे कि इस मन्दी को पूरी पूँजीवादी व्यवस्था के लिए एक खतरा बनने से रोका जा सके। घोषणापत्र में कहा गया है कि घरेलू माँग को विकसित करके भारत मन्दी की मार से बच सकता है। इसके लिए तमाम ऐसी कल्याणकारी नीतियाँ बनाने का सुझाव दिया गया है जिससे कि यहाँ के पूँजीवाद को अति उत्पादन के संकट से बचाया जा सके। घरेलू माँग पैदा करने के लिए देश के भीतर मौजूद

उपभोक्ता वर्ग को विस्तारित करने और मौजूद उपभोक्ता वर्ग की क्रय क्षमता को बढ़ाने की बात की गई है। इसके लिए कई ऐसी नीतियों को लागू करने की बात की गई है जिससे शहरी और ग्रामीण बेरोज़गारों को कुछ रोज़गार मिल सके, भले ही उसमें उन्हें बेरोज़गारी भत्ते से भी कम मज़दूरी मिले। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार संसदीय वामपंथियों ने ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना को बनवाया था। यह उनका राजनीतिक विवेक और कौशल ही था जिससे पिछले कार्यकाल में यूपीए सरकार ने कई ऐसी कल्याणकारी नीतियाँ लागू कीं जिससे कि जनता के मेहनतकश तबकों और बेरोज़गार आबादी के असन्तोष को खतरनाक हदों तक जाने से रोका जा सके। कुल मिलाकर, संसदीय वामपंथियों का घोषणापत्र पूँजीपति वर्ग को मन्दी, बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई के विनाशकारी परिणामों के प्रति आगाह करता और उसे कुछ नुस्खे बताता नज़र आता है।

सभी प्रमुख राजनीतिक पक्षों के घोषणापत्र को देखकर साफ़ नज़र आता है कि जहाँ तक भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों को लागू करने का प्रश्न है, उनमें कोई बुनियादी फ़र्क नहीं है। कोई इसे थोड़ा तेज़ गति से लागू करने की बात करता है, तो कोई इसे धीमी गति से लागू करने की बात करता है। कांग्रेस का घोषणापत्र सबसे सन्तुलित घोषणापत्र था जो पूँजीपति वर्ग को भी तुष्ट करता है और जनता में भी इस व्यवस्था के भ्रम को बरकरार रखने का प्रयास करता है। भारतीय पूँजीपति वर्ग का भी एक बड़ा हिस्सा समझ रहा है कि फिलहाल कुछ समय तक अगर कल्याणकारी नीतियों के द्वारा व्यवस्था के भ्रम को कायम नहीं रखा गया तो बढ़ता जन-असन्तोष पूरी व्यवस्था के लिए अन्तकारी रूप में खतरनाक हो सकता है। इसलिए कांग्रेस को पूँजीपति वर्ग को अपने “कल्याणकारी” कार्यक्रम पर सहमत करने के लिए अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा। पूँजीपति वर्ग अपने अनुभव से ही इनमें से कई बातों की ज़रूरत को समझ रहा है। साथ ही कांग्रेस ने उनके मुनाफ़े को सुनिश्चित करने का स्पष्ट आश्वासन दिया है, इसलिए वे जानते हैं कि इन कल्याणकारी नीतियों से उनके मुनाफ़े पर कोई विशेष नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ने वाला है।

इन चुनावों में भाजपा और संसदीय वामपंथ की पराजय के कारण इसी बात में निहित है। भारतीय राजनीति में इन दोनों की जो ज़रूरत है उन्हें इस समय कांग्रेस अकेले पूरा कर रही है। यही कारण है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग ने एक स्वर में कांग्रेस में अपना विश्वास जताया है। जहाँ संसदीय वामपंथी पूँजीवाद की उस अबाध गति में एक ‘स्पीड ब्रेकर’ बनने का काम करते हैं

जो जनता को इस तेज़ी से उजाड़ती है जो पूँजीवाद के अस्तित्व के लिए ही खतरा बन जाए, वहीं भाजपा भारतीय राजनीति में फासीवाद की ज़रूरत का प्रतिनिधित्व करती है। भाजपा मज़दूरों के अधिकारों को सीमित करने, पूँजी की लूट को निर्बन्ध करने के लिए पूँजीपति वर्ग को खुला हाथ देने और उसके लिए कड़े कानूनों को बनाने, आंतरिक सुरक्षा के नाम पर सभी जनवादी अधिकारों और श्रम अधिकारों को कुचलने और साथ ही विभिन्न क्रान्तिकारी शक्तियों का दमन करने के लिए जानी जाती है। संसदीय वामपंथ वाला काम भी अभी कांग्रेस कहीं अधिक कुशलता से कर रही है और भाजपा के काम को भी कांग्रेस बिना फासीवादी होने की गाली खाए कुशलता से कर रही है। इसलिए कोई वजह नहीं है कि पूँजीपति वर्ग कांग्रेस के अलावा किसी और का समर्थन करता। कांग्रेस इस समय संसदीय वामपंथियों जितनी सुधारवादी और भाजपा जितनी दमनात्मक और गैर-जनतान्त्रिक, दोनों एक साथ है और दोनों से कहीं अधिक कुशलता से। इन चुनावों में इसी कारण से उसे पूँजीपति वर्ग और उसके मीडिया का भरपूर समर्थन मिला और चुनावों में उसे विचारणीय विजय प्राप्त हुई।

इन ढाँचागत कारणों के बाद कांग्रेस की विजय के अन्य तात्कालिक कारणों की भी चर्चा की जा सकती है, जिनका मीडिया प्रचार करता रहा है। मिसाल के तौर पर, राहुल गाँधी 'फैक्टर', प्रियंका गाँधी का प्रचार, भाजपा का पस्त प्रचार, उसकी हताशा और सत्ता की भूख का खुलकर सामने आना और उसकी खोखली नारेबाज़ी, संसदीय वामपंथियों द्वारा कांग्रेस का साथ छोड़ने की ग़लती, कांग्रेस द्वारा यूपीए के पिछले कार्यकाल की "उपलब्धियों" जैसे नरेगा आदि को भुनाने में सफलता आदि। लेकिन ये कारण सहायक कारण थे। बुनियादी कारण समकालीन पूँजीवादी राजनीति और पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों का कांग्रेस द्वारा बेहतर इंतज़ाम था, जिसके कारण कांग्रेस को पूँजीपति वर्ग का भरपूर समर्थन मिला और वह उस पैमाने पर प्रचार और मीडिया का इस्तेमाल कर पाई। इसके बिना कांग्रेस की विजय सम्भव नहीं थी।

चुनाव की इस सारी उठा-पटक, वायदों, नौटंकीयों के बीच एक बार फिर साफ़ हो गया कि जनता के बहुसंख्यक हिस्से का पूँजीवादी चुनावी राजनीति से विश्वास उठ चुका है। यह महज़ विकल्पहीनता की स्थिति है जिसके कारण लोग कभी इस तो कभी उस पार्टी को वोट डालते हैं। इसके पीछे कोई राजनीतिक विश्वास, किसी पार्टी की नीतियों में भरोसा और समर्थन या किसी नेता की ईमानदारी पर यक़ीन नहीं है। पहले लोग 'कम बुरे' का चुनाव किया करते थे। अब तो यह तय करना भी मुश्किल हो गया है कि कम बुरा कौन है। नतीजतन, किसी धार्मिक, जातिवादी, क्षेत्रवादी, भाषावादी छद्म चेतना का शिकार होकर या फिर विकल्पहीनता में लोग किसी को भी वोट डाल देते हैं। और जाहिर है कि लोग ऐसा करते रहेंगे जब तक कि एक क्रान्तिकारी विकल्प उनके सामने पेश नहीं किया जाएगा। कहने की ज़रूरत नहीं है इस सड़-गल चुकी व्यवस्था का क्रान्तिकारी विकल्प पेश करने का काम आम मेहनतकश जनता की इंकलाबी पार्टी ही कर सकती है। एक ऐसी इंकलाबी पार्टी जो चुनाव के रास्ते नहीं बल्कि क्रान्ति के रास्ते एक समानतामूलक और न्यायपूर्ण व्यवस्था और समाज की नींव डाले। ऐसी कोई भी पार्टी खड़ी करने के काम की शुरुआत ऐसे छात्रों और युवाओं को करनी होगी जो इस विकल्प की ज़रूरत को समझ रहे हैं; जो अपना जीवन मेहनतकश जनता के बीच, गाँवों, खेतों-खलिहानों, कल-कारखानों और ग़रीब वस्तियों में प्रचार करने, उन्हें संगठित करने और उनके संघर्ष का नेतृत्व करने में लगा दें; जो अपने करियर और पैसे के पीछे नहीं भाग रहे हैं, बल्कि अपने ऊपर देश के मेहनतकश वर्गों के कर्ज़ को जानते और समझते हैं और उन्नयन होने के लिए प्रतिबद्ध हैं; जिनका दिल देश में जारी नंगे अन्याय और अन्धेरागर्दी पर बगावत करता है। आज ऐसे नौजवान चाहे कैम्पस में हों या कैम्पस के बाहर खड़ी बेरोज़गारों और मज़दूरों की भीड़ में, उन्हें यह समझना होगा कि उनकी तैनाती किस मोर्चे पर है। वरना पूँजीवादी चुनावों का प्रपंच यँ ही चलता रहेगा और करोड़ों बेरोज़गार भारत की सड़कों की धूल फाँकते रहेंगे, हज़ारों बच्चे भूख और कुपोषण से मरते रहेंगे, करोड़ों मेहनतकश ग़रीबी रेखा के नीचे नर्क-सा जीवन बसर करते रहेंगे, देश को विदेशी लुटेरों के हाथों बेचा जाता रहेगा और देशी लुटेरे इस लूट का कमीशन खाते रहेंगे। एक ही रास्ता है—देश की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था में आम मेहनतकश जनता की क्रान्ति के जरिये आमूल बदलाव, जिसमें देश के जागरूक और संवेदनशील युवा को अपनी अग्रणी भूमिका चुननी और निभानी है।



# eUnh dk ekj | sfNurs jkst xkj

## ● श्वेता

‘आह्वान’ के पिछले अंकों में लगातार विश्व आर्थिक मन्दी पर सामग्री दी गयी है। इसमें हमने सिलसिलेवार ढंग से मन्दी के कारणों, वैश्विक स्तर पर पड़ने वाले उसके प्रभावों और अलग-अलग देशों की सरकारों द्वारा मन्दी से निजात पाने के लिए अपनाये गये नुस्खों की विस्तार से चर्चा की है। इस लेख में हम मुख्यतः मन्दी के कारण रोज़गार पर पड़ने वाले प्रभाव को कुछ तथ्यों के ज़रिये समझने की कोशिश करेंगे। साथ ही, 1930 के दशक की महामन्दी एवं मौजूदा आर्थिक मन्दी के बीच की समानताओं पर एक नजर डालेंगे।

भूमण्डलीकरण के दौर में प्रत्येक क्षेत्र एक-दूसरे से नाभिनालबद्ध हो जाता है, इसलिए आर्थिक संकट चाहे किसी एक क्षेत्र में पैदा हुआ है उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर पड़ना लाज़िमी है। मौजूदा आर्थिक संकट में भी कुछ ऐसा ही देखने को मिला। भले ही इसकी शुरुआत वित्तीय क्षेत्र से हुई मगर देखते ही देखते संकट ने औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र को भी अपनी चपेट में ले लिया। ऋणों के महँगे होते जाने के साथ उपभोक्ता खरीद को वित्तपोषित करना नामुमकिन होने लगा, खरीदारी में कमी आने लगी जिसके कारण माँग में गिरावट पैदा हुई। नतीजतन मैनुफैक्चरिंग क्षेत्र में उत्पादन में कटौती हुई और इसके साथ ही शुरु हुआ छँटनी का सिलसिला। ताजा स्थिति के अनुसार अगर अमेरिका में बेरोज़गारी की बात की जाये तो मालूम पड़ता है कि उसने पिछले कई वर्षों का रिकार्ड तोड़ दिया है। आइये, अब तथ्यों के जरिये मन्दी की वजह से रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावों को समझा जाये।

हाल ही में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) की रिपोर्ट सामने आई जिसमें बताया गया है कि मन्दी के कारण इस वर्ष दुनिया भर में 5 करोड़ लोगों को बेरोज़गारी की मार झेलनी पड़ेगी। करीब 1 अरब 40 करोड़ लोग बेहद गरीबी में गुजर-बसर करने को मजबूर हो जायेंगे। *मूडीस कैपिटल ग्रुप* के प्रमुख अर्थशास्त्री जॉन लांस्की का कहना है कि वर्ष 2009 में अमेरिका में करीब 20 लाख 10 हजार नौकरियों में कटौती की जायेगी। कुछ कम्पनियों द्वारा छँटनी की प्रक्रिया पर अगर नजर डाली जाये तो नौकरियों के कम होते जाने की रफ़्तार का अनुमान बड़े आराम से लगाया जा सकता है। अमेरिका की दूसरी सबसे बड़ी स्वास्थ्य इंश्योरेंस कम्पनी *वेल पॉइंट* ने करीब 1500 नौकरियों में कटौती करने की बात की। दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी कम्प्यूटर प्रोसेसर बनाने वाली कम्पनी *एडवांसड माइक्रो* ने 1100 नौकरियों

को कम कर दिया है जो कि काम करने वाले कर्मचारियों का 10 प्रतिशत है। इसी तरह *जनरल इलेक्ट्रिक* की वित्तीय शाखा ने करीब 7500 से 11000 कर्मचारियों की छँटनी की बात की है। दुनिया की सबसे बड़ी हीरा बनाने वाली कम्पनी *डी बियर्स* ने 1000 नौकरियों में कटौती कर दी है; जापान की तीसरी सबसे बड़ी मोटर कार कम्पनी ने 2000 नौकरियों को कम करने की बात की। स्वीडन की दूसरी सबसे बड़ी ट्रक निर्माता कम्पनी *स्केनिया एवी* ने कहा है कि मन्दी के कारण माँग में कमी के चलते वह कम्पनी के 2000 अस्थायी कर्मचारियों के कंट्रैक्ट का नवीनीकरण नहीं करेगी। ब्रिटेन की सबसे बड़ी इंजीनियरिंग डिजाइन कम्पनी *डब्ल्यू एस एटकिंस* ने कम्पनी में मध्य पूर्व की शाखा में करीब 210 नौकरियों में कमी करने की योजना बनाई है। *सोनी* ने 80,000 नौकरियों में कटौती करने के साथ ही दुनिया भर में कार्यशील 10 प्रतिशत फैक्ट्रियों को बन्द करने की घोषणा की है।

मन्दी के कारण विश्व व्यापार में आई कमी के चलते भारत और चीन जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था पर भी मन्दी का कहर बरपा हो रहा है। इन देशों में सकल घरेलू उत्पाद का एक बड़ा हिस्सा उपभोक्ता सामग्रियों और कच्चे माल के निर्यात से आता है। मन्दी के कारण उपभोक्ता सामग्रियों के निर्यात में आई कमी के कारण इन अर्थव्यवस्थाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ रहा है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) के अनुसार उभरती एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में निर्यात की वृद्धि दर में लगातार गिरावट का रुझान देखने को मिलेगा। यह दर वर्ष 2007 में 9.6 प्रतिशत थी, वर्ष 2008 में 5.6 प्रतिशत थी और वर्ष 2009 में 0.8 प्रतिशत हो जायेगी। मन्दी के कारण भारत के निर्यात क्षेत्र को करीब 1000 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है। साथ ही मैनुफैक्चरिंग क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र, बैंक एवं बीमा क्षेत्र पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। कई लाख लोग बैंक, बीमा एवं सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में नौकरियाँ गँवा चुके हैं। *लेबर ब्यूरो*, *शिमला* द्वारा आठ क्षेत्रों में किये गये सर्वेक्षण से पता चला कि इन क्षेत्रों में जहाँ सितम्बर 2008 में 1 करोड़ 62 लाख रोजगार मौजूद थे वहीं दिसम्बर 2008 में 1 करोड़ 57 लाख ही रोजगार रह गये। करीब 5 लाख रोजगारों की कमी दर्ज की गयी। इन आठ क्षेत्रों में कपड़ा उद्योग, धातु उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, ऑटोमोबाइल उद्योग, परिवहन उद्योग, खान उद्योग, निर्माण उद्योग एवं रत्न उद्योग शामिल है। अगर सर्वेक्षण की

रिपोर्ट पर गौर किया जाये तो पता चलता है कि उपरोक्त उद्योगों में सितम्बर 2008 के बाद से प्रति माह 1.01 प्रतिशत की दर से रोजगार में कमी आई है। केन्द्रीय टेक्सटाइल मंत्रालय के अनुसार कपड़ा उद्योग में करीब 3,00,000 से 5,00,000 लोग अपनी नौकरियाँ गँवा देंगे। ज्ञात हो कि भारत का कपड़ा उद्योग निर्यात क्षेत्र में अहम भूमिका निभाता है। करीब 50 प्रतिशत टेक्सटाइल निर्यात के काम आता है जिसका 60 प्रतिशत तो केवल अमेरिका और यूरोपीय संघ को ही निर्यात किया जाता है। कपड़ा उद्योग के अलावा अगर नौकरियों में कमी की बात करें तो हम पाते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी में अभी तक 4 लाख लोग नौकरियों से हाथ धो बैठे हैं, मुम्बई में रबड़ उद्योग में 3000 लोगों के रोजगार छिन गये हैं, सूरत में रत्न उद्योग में करीब 1 लाख लोगों की नौकरियाँ छिन गयी हैं। इन सबके अलावा भारत में अनौपचारिक क्षेत्र के तहत कई फैक्ट्रियाँ हैं जो ग्लोबल असेम्बली लाइन का ही एक हिस्सा हैं जहाँ स्पेयर पार्ट्स आदि बनाने का काम होता है। ऐसे छोटे-छोटे कारखानों में भी मज़दूर रोज-ब-रोज छँटनी का सामना कर रहे हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था में मन्दी कोई नई परिघटना नहीं है। पहले भी अर्थव्यवस्था मन्दी के भँवर में जा फँसी है मगर ध्यान देने योग्य बात यह है कि मौजूदा मन्दी की स्तर, तेज़ी, सघनता और व्यापकता के लिहाज़ से सिर्फ 1930 की महामन्दी से तुलना की जा सकती है। इसके अलावा बेरोजगारी में हो रही वृद्धि भी पहले की किसी और मन्दी में इतनी तेज़ी से सामने नहीं आयी। केवल 1930 के दशक में आई महामन्दी में ही बेरोजगारी की दर वर्तमान मन्दी से अधिक थी। इसी कारण कई अर्थशास्त्री वर्तमान मन्दी की तुलना 1930 के दशक की महामन्दी से कर रहे हैं। *मेरिल लिंच* के सी.ई.ओ. जॉन थेन के अनुसार “यह मन्दी 1987 या 1998 या 2001 जैसी कत्तई नहीं है। जिस प्रकार के संकट से हम गुज़र रहे हैं उसमें जरूरी है कि एक नज़र 1929 के दौर पर डाली जाये।” अगर 1930 के दशक की महामन्दी की बात करें तो उसका तात्कालिक कारण था – शेयर बाज़ार का 29 अक्टूबर 1929 को ध्वंस जिसके कारण करीब 40 बिलियन डॉलर स्वाहा हो गया। 9000 बैंक धराशाही हो गये। थोड़े बहुत जो बैंक मन्दी के चपेट से बच गये थे उन्होंने नए ऋण देना बन्द कर दिया जिसके चलते व्यापार में भारी नुकसान होने लगा। बेरोजगारी की दर 25 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी, करीब 1 करोड़ 30 लाख लोग बेरोजगार हो गये, एक तिहाई आबादी बेहद गरीबी में डूब गयी। औद्योगिक उत्पादन में 1929 से 1932 के बीच 45 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी। आवास-निर्माण में करीब 80 प्रतिशत की कमी आई। इस महामन्दी का प्रभाव न केवल अमेरिका पर बल्कि आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, लातिन अमेरिका, नीदरलैंड, ब्रिटेन आदि पर भी पड़ा।

वर्तमान मन्दी में भी 1930 के दशक की महामन्दी जैसी कुछ समानताएँ नज़र आने के चलते पूँजीवादी व्यवस्था के पहरेदारों की नींद हराम हो गयी है। तभी तो अलग-अलग देशों की सरकारें अर्थव्यवस्थाओं को मन्दी से उबारने के लिए कई तिकड़मों भिड़ा रही है। अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, बेलजियम,

आइसलैंड, फ्रांस ने अपनी-अपनी अर्थव्यवस्थाओं में क्रमशः 990, 200, 876, 50, 16, 864, 300 बिलियन डॉलर के बेलआउट पैकेज डाल दिये हैं। मगर व्यवस्था के पैरोकार भी इस सच्चाई से भली-भांति वाकिफ हैं कि इस तरह के नुस्खे केवल ‘पेन किलर’ का काम करते हैं, उनमें रोग को जड़ से खत्म करने की ताकत नहीं है। एक खतरा जो व्यवस्था के चाकरों के पाँव में काँटे की तरह चुभ रहा है वह है बढ़ती बेरोजगारी एवं गरीबी के कारण जनअसंतोष फूट पड़ने की सम्भावना। इस खतरे से तमाम हुक्मरानों में बौखलाहट साफ दिखाई देने लगी है। जिसका एक उदाहरण अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) के डायरेक्टर जेनेरल जुआन सोमाविया का बयान है जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि आज अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विश्वव्यापी सामाजिक संकट से निपटने के लिए जरूरी है कि उत्पादक निवेश को बढ़ावा दिया जाये।

हाल ही में हुए जी-20 शिखर सम्मेलन में मन्दी का मुद्दा पूरी तरह छाय़ा रहा। अमेरिका और यूरोपीय संघ ने मिलकर विश्व अर्थव्यवस्था के लिए एक बेल आउट पैकेज घोषित किया। इसमें चीन की मदद ली गयी। नकदी के सूख जाने के जिस संकट का शिकार विश्व अर्थव्यवस्था है उसे फिलहाली तौर पर भी दूर करने की ताकत अमेरिका और यूरोपीय संघ में नहीं है। यह ताकत फिलहाल सिर्फ चीन के पास है जिसके पास अपने ज़बर्दस्त विदेशी व्यापार के चलते भारी मुद्रा भण्डार है। इस मुद्रा भण्डार के बूते पश्चिमी पूँजीवाद की नैया थोड़ी देर के लिए भँवर से निकालने के लिए (क्योंकि यह थोड़ी देर के लिए ही सम्भव है) चीन भी विश्व पैमाने पर अधिक प्राधिकार और ताकत की माँग कर रहा है। अमेरिका और यूरोपीय संघ को अपने वर्चस्व के टूटने का खतरा नज़र आ रहा है इसलिए फिलहाली तौर पर अमेरिका और यूरोपीय संघ ने अपने मतभेदों को दरकिनार करने पर सहमति बनाई है। ओबामा जी-20 सम्मेलन के बाद स्ट्रुटगार्ड में टाउन हॉल मीटिंग में अपने भाषण में यूरोप और अमेरिका के पारंपरिक याराने का जिक्र करते-करते भावातिरेक में आ गये थे! लेकिन ऐसी सभी साम्राज्यवादी यारियाँ क्षणिक हुआ करती हैं। विश्व इस समय जिस उथल-पुथल से गुज़र रहा है उससे निकल पाने का रास्ता फिलहाल विश्व पूँजीवाद को नज़र नहीं आ रहा है। उसके लिए राहत की बात सिर्फ इतनी है कि दुनिया भर में क्रान्तिकारी ताकतें उनसे भी ज़्यादा बिखराव की शिकार हैं। ऐसे में यह आर्थिक मन्दी अगर सामाजिक उथल-पुथल को जन्म देगी भी तो विश्व पूँजीवाद उस पर काबू पा लेगा। अगर कोई संगठित, ताकतवर और विवेकवान क्रान्तिकारी आन्दोलन किसी सम्भावना-सम्पन्न देश में मौजूद होता, तो तस्वीर काफी ज़बर्दस्त करवट भी ले सकती थी।

वैश्विक वित्तीय बाज़ार ने एक ऐसा जाल बुन लिया है जिसमें से निकलने का कोई रास्ता व्यवस्था के वफादारों को समझ नहीं आ रहा है। आर्थिक संकट पूँजीवाद की लाइलाज बीमारी है जिससे निजात पाने का केवल एक ही रास्ता है कि वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में गम्भीरता से सोचा जाये एवं तैयारियों में जुटा जाये।

# VkVh d h d kyh dj rwa vk\$ ml d h u\$ks

● अजीत

आज कल मीडिया में एक खबर लगातार छापी हुई है। खबर है 'नैनो'। गत 23 मार्च को टाटा ने नैनो को लॉन्च किया। हालाँकि टाटा की यह महत्वाकांक्षी योजना अपने निर्धारित समय से देरी से परवान चढ़ी। पहले नैनो उत्पादन संयंत्र पश्चिम बंगाल के सिंगूर में लगाया गया था। पश्चिम बंगाल की कथित वामपंथी सरकार और उसके नुमाइंदा बुद्धदेव भट्टाचार्य जो वहाँ के मुख्यमंत्री हैं, ने टाटा के तलवे सहलाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी और संयंत्र के लिए किसानों की ज़मीन औने-पौने दामों पर छीनकर अपने खैरखाह टाटा को देनी शुरू की। लेकिन जमीन की छीना-झपटी के कारण उसे स्थानीय किसानों के विरोध का भारी सामना करना पड़ा। उसने तथा उसकी सरकार ने इस विरोध को कुचलने के लिए तमाम हथकण्डे अपनाये। किसानों के दमन के तमाम तरीके अपनाये। लेकिन किसान भी अड़े रहे। किसानों के विरोध का समर्थन तृणमूल कांग्रेस ने अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के लिए बखूबी किया। और अन्त में टाटा को नैनो परियोजना पश्चिम बंगाल से हटानी पड़ी। इसके वहाँ से हटते ही तमाम राज्यों ने अपनी-अपनी पेशकश टाटा के सामने रख दी। लेकिन अन्त में बाजी मार ले गये हिटलर के भारतीय वंशज हिन्दुत्व ध्वजाधारी नरेन्द्र मोदी और यह परियोजना गुजरात के साणंद में स्थानान्तरित हो गयी। पश्चिम बंगाल के किसानों ने अपने विरोध से टाटा को ये कदम पीछे हटाने पर मजबूर तो किया ही साथ ही पश्चिम बंगाल के इन नकली वामपंथियों का फासीवादी चेहरा भी सामने ला कर रख दिया।

खैर, जो हुआ वो तो हमने देखा ही है। इस प्रकार आते-आते टाटा ने गत 23 मार्च को नैनो को लॉन्च कर दिया। और उसकी यह नैनो तमाम अखबारों के मुख्यपृष्ठ पर और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में छाई रही। हालाँकि 23 मार्च को ही शहीदे आजम भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत का 78वां साल पूरा हुआ था लेकिन किसी भी अखबार के मुख्य पृष्ठ या न्यूज चैनल ने हमे उनके बारे में कुछ नहीं बताया। टाटा ने अपनी प्रस्तुति के दौरान कहा "भैंने भारत के 'आम आदमी' को कम कीमत पर गाड़ी देने का जो वायदा किया था, उसे पूरा करके मैं बहुत खुश हूँ।"

अब यहाँ पर हमें यह देखना होगा कि रतन टाटा किस आम आदमी के बारे में बात कर रहे हैं, उन्हें आम आदमी से कितना प्यार और हमदर्दी है और इस परियोजना का उद्देश्य क्या है?

**टाटा का आम आदमी :**

यहाँ पर टाटा ने किस आम आदमी कि बात की है हमें यह

समझना होगा। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 84 करोड़ ऐसे लोग हैं जो रोजाना 20 रुपये पर गुज़ारा करते हैं, उनमें से भी 30 करोड़ के आसपास ऐसे लोग हैं जो महज 7-9 रुपये पर जीवन व्यतीत करते हैं या कहे कि जीवन पूरा होने का इंतज़ार करते हैं। रोज़ाना 9000 बच्चे भूख, कुपोषण और इलाज के अभाव में दम तोड़ते हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार काम करने वाली आबादी का 50% बेरोज़गार है। ये सब आँकड़े सरकारी रिपोर्ट के हैं, सच्चाई का चेहरा इससे भी स्याह है। ऐसे में, क्या ये लोग जो तिल-तिल मरने को मजबूर हैं, टाटा की नैनो खरीद पायेंगे! करोड़ों की यह बेरोज़गार आबादी क्या नैनो को खरीद पायेगी? यदि नहीं तो फिर टाटा किस की बात करते हैं?

यहाँ पर बात करें तो टाटा ने नैनो को बनाया है मुड़ीभर मध्यवर्ग के लिए और वह भी इस पूँजीवादी व्यवस्था के जीवन की घड़ियों को थोड़ा और बढ़ाने के लिए। मध्यवर्ग की अगर बात करें, तो यह वर्ग हमेशा अपने से ऊँचे वर्ग में पहुँचने के सपनों में जीता है। लेकिन जब उसके सपने इस पूँजीवादी व्यवस्था में परवान नहीं चढ़ पाते तो वह इस व्यवस्था में अपने लिए अवसर न पाकर बेचैन हो उठता है। ऐसे में इस वर्ग में से कुछ रैडिकल तत्व इस व्यवस्था में बदलाव की चाहत पालते हैं लेकिन ये तत्व अपने वर्ग दृष्टिकोण से केवल व्यवस्था सुधार पर ध्यान देते हैं। लेकिन पूँजीपति वर्ग को सुधार की मांग से भी डर लगता है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि इस पूँजीवादी लूट और पूँजीवादी जनतन्त्र के भ्रम को बरकरार करने के लिए कुछ किया जाये, और वही किया रतन टाटा ने। उसने मध्यवर्ग के लिए कम कीमत में गाड़ी लाकर इस वर्ग के अन्दर उपभोक्तावादी संस्कृति को नये सिरे से बढ़ावा देने का काम किया है ताकि ये लोग नैनोमय हो जायें और इनकी चेतना को नैनो के पहिये कुचलते रहें।

**रतन टाटा की काली करतूतें :**

रतन टाटा आम जनता के कितने बड़े खैरखाह हैं यह तो इस तथ्य से ही पता चल जाता है कि भोपाल गैस काण्ड की जिम्मेदार हत्यारी कम्पनी यूनियन कार्बाइड का अधिग्रहण करने वाली कम्पनी डोव केमिकल्स ने जब भारत में निवेश करना चाहा तो टाटा इसके लिए जी-जान से जुट गये। दिसम्बर 1984 में 20 हजार लोगों की हत्या और न जाने कितने ही लोगों को अपंग बनाने वाली यूनियन कार्बाइड ने इस हादसे के लिए अब तक न तो कोई समुचित रूप से हर्जाना दिया है न पीड़ित और प्रभावित लोगों को ठीक से मुआवजा ही दिया है। इसके द्वारा बनाये गये विषैले कीटनाशक अभी ज्यों के त्यों पड़े हैं जो वहाँ की जमीन को

और भूजल को लगातार प्रदूषित कर रहे हैं।

अन्तराष्ट्रीय कानूनों और मानकों के अनुसार जिस कम्पनी ने प्रदूषण फैलाया है उसी के लिए इसकी सफाई का प्रावधान है। इसी सबके तहत 1995 में यूरोपीय समुदाय को रवाण्डा से करीब 230 टन फफूंदीनाशी रसायन मंगवाने पड़े थे और करीब 300 टन बेकार हो चुके कीटनाशक को यमन से ब्रिटेन वापस भेज दिया गया था।

लेकिन हमारे देश में पूँजीपतियों की पैरोकार इस नपुंसक सरकार में क्या इतनी हिम्मत हो सकती थी? इस सरकार ने उसी वक्त यूनिनयन कार्बाइड के हत्यारे चेरमैन वारेन एण्डरसन को गिरफ्तार करने की बजाय उसे विशेष विमान से अमरीका पहुँचा दिया था और सरकार उस कम्पनी की नयी मालिक डोव केमिकल्स को भारत में निवेश की इजाजत देने को लालायित है। लेकिन जब कुछ पर्यावरणविदों और भोपाल गैस पीड़ितों ने इसका विरोध किया तो सरकार को मजबूरन कुछ करना पड़ा। तब भारी दबाव के कारण जून 2005 में सफाई का काम शुरू हुआ इसके खर्च के लिए जब इस सरकार ने डोव केमिकल्स से 100 करोड़ रुपये माँगे तो उसने साफ मना कर दिया और कहा कि जब तक वह इस देनदारी से मुक्त नहीं होगी तब तक वह भारत में कोई निवेश नहीं करेगी। अब कम्पनी के साथ गठजोड़ से भारतीय जनता को लूटने की योजना परवान कैसे चढ़ती? इसको लेकर सबसे ज्यादा बैचेनी हुई रतन टाटा को। जिस सरकार को इस अपराध के लिए हर्जाना ना देने वाली कम्पनी की पूँजी जब्त कर लेनी चाहिए थी और जिस पूँजीपति वर्ग को इस काम में सरकार का सहयोग देना चाहिए था वे ही इस अपराधिक षड़यन्त्र में सहयोगी बने हुए थे। खैर, इसमें कोई ताज्जुब नहीं होना चाहिए। इस सरकार और पूँजीपति वर्ग से आप उम्मीद भी क्या कर सकते हैं?

रतन टाटा परेशान हो उठे और उन्होंने प्रस्ताव रख दिया, कि वह समान विचारों वाले औद्योगिक घरानों से सहयोग लेकर यह रकम जुटाने का प्रयास करेंगे। विदेशी पूँजी के साथ गठजोड़ कर देश की जनता के शोषण में लगे साम्राज्यवाद के इन जूनियर पार्टनरों से यही उम्मीद की जा सकती थी। क्या रतन टाटा को यह नहीं पता था कि वह यह प्रस्ताव एक ऐसी कम्पनी के लिए कर रहे हैं जो नापाम, एजेण्ट ऑरेंज और डाई आक्सिन जैसे जहरीले रसायनों का उत्पादन करके पूरी दुनिया में न जाने कितने लोगों की जान ले चुकी है और पर्यावरण को भारी नुकसान पहुँचा चुकी है? निश्चित रूप से श्री रतन टाटा एक पढ़े-लिखे जागरूक नागरिक हैं और उन्हें अच्छी तरह से पता है कि वे किस कम्पनी की हिमायत में लगे हुए हैं। उनका मकसद साफ है : डोव केमिकल्स के साथ गठजोड़ करके मेहनतकश और आम जनता को लूटना।

इन्हीं रतन टाटा ने अमरीकी कम्पनी लॉकहीड मार्टिन और बोईंग को वायुसेना को लड़ाकू विमान सप्लाइ का ठेका दिलाने के लिए लगातार दो दिन एफ-16 और एफ-18 लड़ाकू सुपरसोनिक विमानों पर दुस्साहसिक उड़ान भरी। भारत जैसे देश में जहाँ करोड़ों लोगों की जीने की पहली शर्त रोटी ही नहीं पूरी हो पाती वहाँ रक्षा के नाम पर अरबों-खरबों रुपये सैन्य ताकत पर खर्च कर दिये जाते हैं क्योंकि इन सौदों के बल पर ही इन कम्पनियों और टाटा जैसे इनके एजेण्टों को अपनी तिजोरियाँ भरने का मौका मिलता है। ऐसे में टाटा का आम आदमी जपना क्या है? सच यह है कि “इन

पूँजीपतियों की देशभक्ति, राष्ट्रवाद, मानवतावाद, जनवाद मण्डी में पैदा होता है। इनके लिए मुनाफा ही सबकुछ होता है।” अगर इनके मुनाफे पर आम-मेहनतकश जनता के खून के छींटे ना हो तो वह इनके लिए अधूरा मुनाफा होता है।

### कैसे देगा टाटा इतनी सस्ती नैना?

टाटा की नैना के दाम की हर तरफ चर्चा हो रही है। और लोग (मीडिया, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, खाये-पीये अघाये लोग) उसकी पीठ थपथपा रहे हैं कि टाटा ने इतनी सस्ती कार पेश कर इतिहास रच दिया। लेकिन असल बात यह है कि जब पश्चिम बंगाल से नैना का मुख्य कारखाना हटा कर गुजरात लाया गया जिसमें कि नरेन्द्र मोदी की अहम भूमिका रही है, तो जनता के करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा दिया गया। मेहनतकश आवाम का टैक्स के रूप में जमा धन द्वारा इसे बनाया गया है। एक अनुमान के मुताबिक एक लाख की कीमत वाली हरेक नैना कार पर जनता की गाड़ी कमाई का 60 हजार रुपया लगा है। नैना सयन्त्र के लिए गुजरात सरकार ने टाटा को 0.1 प्रतिशत साधारण ब्याज की दर से पहले चरण के लिए 2,900 करोड़ रुपये का कर्ज दिया है। इसकी अदायगी 20 वर्षों में करनी है। कम्पनी को कौड़ियों के भाव 1,100 एकड़ जमीन दी गई है। इसके लिए स्टाम्प ड्यूटी और अन्य कर भी नहीं लिये गये। कम्पनी को 14,000 घनमीटर पानी मुफ्त में उपलब्ध करवाया जा रहा है। साथ ही सयंत्र में बिजली पहुचाने का सारा खर्च सरकार वहन करेगी। यही नहीं गुजरात सरकार और टाटा के बीच हुए समझौते को गुप्त रखा गया था। मोदी ने विशेष आदेश देकर नैना से संबंधित सारी प्रक्रिया तीन दिन में खत्म करवा दी थी। यह थी मोदी सरकार की स्पष्ट पक्षधरता अपने आकाओं के प्रति।

दो बातें और। क्या टाटा को या नैना के स्पेयर पार्ट्स बनाने वाली सहयोगी कम्पनियों को, मैनुफैक्चरिंग के लिए कच्चा माल उनके द्वारा बनायी जा रही अन्य गाड़ियों की अपेक्षा सस्ता मिला होगा? नहीं ऐसा तो हो नहीं सकता क्योंकि कच्चे माल के उत्पादन पर टाटा जैसे लोगों का ही कब्जा है और वे अपने मुनाफे में कमी करने से रहे। क्या टाटा ने नैना परियोजना में लगे प्रबन्धन अधिकारियों और इन्जीनियरों को कम वेतन दिया होगा? ऐसा तो कदापि हो ही नहीं सकता। उनको तो और अधिक ही दिया गया होगा। तो फिर टाटा गाड़ी की लागत कहाँ से पूरा करेगा? यह एक अहम सवाल है। और इसका जवाब एकदम साफ है। वह लागत पूरी करेगा और मुनाफा भी कमायेगा; मजदूरों, मेहनतकशों के खून को निचोड़कर। उसके लिए कम से कम कीमत पर खेती की जमीन खरीदेगा और किसानों पर विरोध करने पर गोलियाँ बरसायेगा। निर्माण कार्य में लगे मजदूरों से कम से कम कीमत पर ज्यादा से ज्यादा घण्टे काम करवायेगा तब कहीं जाकर उसकी गाड़ी तैयार होगी। टाटा ये सब करेगा तभी जाकर इतनी कम कीमत पर वह गाड़ी बना पायेगा, वरना इसके अलावा कोई रास्ता नहीं। और सरकार जो इसकी सस्ती भूमि कर में छूट आदि सुविधायें दी हैं वो भी जनता की कमाई है। लेकिन यहाँ के खाये-पीये अघाये लोगों, उनकी चाटुकार सरकार, मीडिया को नैना की चमक ही दिखती है। उन्हें यह नहीं दिखता कि इस नैना के पहिये ने सिंगुर से साणंद तक कितने मेहनतकशों के सिरों को कुचला है। ये अनायास ही

(पेज 14 पर जारी)

## यह आम जनता के प्रतिनिधियों का चुनाव है या कॉरपोरेट जगत के मैनेजिंग कमेटी का!?

● योगेश

यह शीर्षक कुछ अटपटा सा लग सकता है और शायद कुछ बड़ा भी लेकिन इस टिप्पणी का मकसद ही यह जानने की कोशिश करना है कि आखिर चुनाव किस बात के लिए होते हैं। 1952 से लेकर अब तक इस देश के लोगों ने ग्राम पंचायत और निगम पार्षद से लेकर विधानसभा और लोकसभा चुनावों के रूप में अनगिनत चुनाव देखे हैं। इस लोकतांत्रिक माहौल में देश की हालत यह है कि करीब 77 फीसदी लोग 20 रुपये या उससे कम की दैनिक आय पर गुजारा कर रहे हैं, और 10 फीसदी आबादी की सालाना आमदनियाँ लाखों-करोड़ों में है। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि चुनाव हमारे-आपके लिए जनसेवा की भावना से लहालोट हो रहे जनप्रतिनिधियों के चुनाव करने के लिए नहीं होते। आज देश में जिस किस्म का विकास तो शासक वर्ग प्रत्यक्षतः बंदूक की नोक पर भी कर सकते थे, फिर चुनाव रूपी नौटंकी और जन-प्रतिनिधियों की क्या जरूरत?

दरअसल इन सवालियों का सम्बन्ध जुड़ा है इस पूँजीवादी व्यवस्था के विकासक्रम से। अपनी सभी पूर्व व्यवस्थाओं के मुकाबले इस व्यवस्था ने उत्पादन के साधनों को अभूतपूर्व रूप से विकसित किया, और इसी के अनुपात में उत्पादन-सम्बन्धों को भी। उत्पादन सम्बन्धों के विकास के साथ ही आम जनता की चेतना में अभूतपूर्व रूप से विकास होता है। ऐसे में प्रत्यक्ष रूप से बलपूर्वक जनता पर राज करना असम्भव बन जाता है। दूसरे, उत्पादन के साधन इतने विकसित हो जाते हैं कि बिना नियम कानूनों (जो कि पक्षपातपूर्ण होते हैं) के इनका मैनेजमेंट करना भी असम्भव बन जाता है। शासक वर्गों की यह मजबूरी बन जाती है कि वह जनता में यह भ्रम पैदा करें कि यह पूरी व्यवस्था उसी की स्वीकृति लेकर, उसके द्वारा चुने गये जन-प्रतिनिधियों के द्वारा चलाई जा रही है। इसी के मद्देनजर जनता की सेवा के नाम पर पुलिस, फौज, न्यायपालिका जैसी संस्थाओं को पैदा और विकसित किया जाता है। वास्तव में यह संस्थाएँ हमेशा ही शासक वर्गों की सेवा करती हैं। इन्हीं के बीच चुनाव रूपी एक अत्यंत जीवंत नाटक भी रचा जाता है जिसमें लोग सीधे अपने जन-प्रतिनिधियों को चुनने का अवसर प्राप्त करते हैं, और उनका यह विश्वास और पुष्ट हो जाता है कि सत्ता के भाग्यविधाता का निर्धारण वे खुद कर रहे हैं। यह सिर्फ एक मिथ्याभास होता है और कुछ भी नहीं।

अभी हाल ही में प्राप्त, विभिन्न औद्योगिक घरानों और रियल एस्टेट कम्पनियों द्वारा देश की दो सबसे बड़ी चुनावबाज पार्टियों भाजपा और कांग्रेस को 2003-2007 के बीच दिए गए चन्दों का ब्यौरा भी गौर करने योग्य है। केवल प्रतीकात्मक आँकड़ें हैं, चन्दों की असली रकम इससे कम से कम दस गुना ज्यादा है। इसका अंदाजा महज इसी बात से लगाया जा सकता है कि कांग्रेस और भाजपा इन लोकसभा चुनावों में 250 करोड़ सिर्फ प्रचार के लिए खर्च कर रहे हैं।

सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं बल्कि लगभग सभी पूँजीवादी देशों में चुनावबाज पार्टियों की पूरी फण्डिंग कॉरपोरेट घरानों के दम पर ही होती है। यानी, जन-प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए सारा खर्च ये घराने उठाते हैं। ये इसे अपनी जिम्मेदारी क्यों समझते हैं, यह सहज ही समझा जा सकता है। दूसरी बात जो और भी महत्वपूर्ण है कि सभी घरानों ने मिलकर देश की बड़ी पार्टियों कांग्रेस और भाजपा दोनों को ही 50-50 करोड़ रुपए दिए हैं, यानी, इन घरानों की पार्टियों को लेकर कोई विशेष पसंद नहीं है। इन्हें दोनों ही सामान्य रूप से स्वीकार्य है। ऐसा होना लाजिमी भी है क्योंकि इन दोनों पार्टियों में आर्थिक नीतियों को लेकर कोई मतभेद नहीं है। दोनों ही जनता को लूटने वाली भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों पर एक हैं।

शायद यह समझने के लिए किसी को जीनियस होने की जरूरत नहीं है यह चुनाव जनप्रतिनिधियों के लिए नहीं, बल्कि पूँजीपतियों के मैनेजिंग कमेटी के लिए होता है।

### किसको किसने दिया चन्दा

कम्पनी	कांग्रेस	कम्पनी	भाजपा
आदित्य बिड़ला	21.71	स्टरलाइट	10.00
वीडियोकॉन	04.5	अदाणी	04.00
टाटा	4.32	वीडियोकॉन	03.50
आईटीसी	1.45	आदित्य बिड़ला	02.96

एंबियेंस	1.05	टाटा	02.67
एल एंड टी	1.00	एल एंड टी	01.60
स्टरलाइट	1.00	आईटीसी	01.38
नवीन जिंदल	1.00	अकीक	01.50
बजाज	1.00	जीएमआर	01.00
एलएम थापर	0.70	विजय माल्या	01.00
रेनबैक्सी	0.65	पुंज लॉयड	01.00
टुडे हाउस	0.05	बजाज	01.00

(करोड़ रुपये में)

### किस को मिला कितना चन्दा

भाजपा	52.93
कांग्रेस	52.42
शिवसेना	04.17
तेलुगू देशम पार्टी (टीडीपी)	02.25
सपा	02.45
पीएमके	02.86

(करोड़ रुपये में)

### रियल इस्टेट कम्पनियों द्वारा दिया गया

#### चन्दा

एंबियेंस	1.05
सोमदत्त बिल्डर्स	0.75
पुंज लायड	1.00
टुडे हाउस एंड इन्फ्रास्ट्रक्चर्स	0.55
जुविलेंट समूह	0.50
रियल इस्टेट एसोसियेशन क्रेडा	0.47
संस्कृति डेवलपर्स	0.50

(करोड़ रुपये में)

## जन्म तिथि (9 अप्रैल) और पुण्य तिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर महान चिन्तक राहुल सांकृत्यायन के कुछ विचारणीय उद्धरण



● हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार रहना चाहिए। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज्यादा ज़रूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें आगे-पीछे-दाहिने-बायें दोनों हाथों से नंगी तलवारें नचाते हुए अपनी सभी रुढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना होगा।

● असल बात तो यह है कि मज़हब तो सिखाता है आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना। हिन्दुस्तानियों की एकता मज़हब के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मज़हबों की चिता पर। कौव्वे को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मज़हबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़कर इलाज नहीं।

● यदि जनबल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्दम शक्ति ने, फासिज्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है।

● रुढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रुढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं है।

● हमारे सामने जो मार्ग है उसका कितना ही भाग बीत चुका है, कुछ हमारे सामने है और बहुत अधिक आगे आने वाला है। बीते हुए से हम सहायता लेते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना कोई प्रगति नहीं, प्रतिगति-पीछे लौटना होगा। हम लौट तो सकते नहीं क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है।

# नेपाली क्रान्ति : महत्व और भविष्य

• शिवानी

*यह लेख अप्रैल, 2009 में लिखा गया है और इसमें उस समय तक के परिवर्तनों का विश्लेषण है। गौरतलब है कि नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेता प्रचण्ड ने हाल ही में प्रधानमन्त्री पद से इस्तीफा दे दिया। इसके पीछे तमाम कारण निहित थे जिनमें से कुछ की ओर इस लेख में भी इशारा किया गया है। पाठकगण इस बात को ध्यान में रखकर यह लेख पढ़ें कि यह अप्रैल 2009 में लिखा गया है। पुराना होने के बावजूद नेपाली क्रान्ति के महत्व और उसके भविष्य के बारे में इस लेख में महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं।*

- सम्पादक

गत एक वर्ष (अप्रैल 2008 से) पूरे नेपाल और नेपाली इतिहास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा। 10 अप्रैल 2008 को हुए संविधान सभा के चुनाव में नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरकर आई। सार्विक मताधिकार के आधार पर संविधान सभा का चुनाव नेपाल ही नहीं बल्कि कहीं तो पूरे भारतीय उपमहाद्वीप की बहुत बड़ी घटना है। इसके महत्व को इस परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है कि पाकिस्तान, भारत या बांग्लादेश कहीं भी संविधान का निर्माण सार्विक मताधिकार से चुनी गयी संविधान सभा द्वारा नहीं किया गया। भारत में 1935 के 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट' के तहत चुनी गयी असेम्बली को ही संविधान सभा का दर्जा दे दिया गया था और उसमें कुछ विशेषज्ञों को शामिल कर लिया गया था। इस मायने में संविधान निर्माण की प्रक्रिया का इतना जनवादी होना नेपाल की जनता की एक जीत तो है ही, साथ ही, इसका एक वैश्विक महत्व भी है।

चुनाव शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न होने से पहले, दुनिया भर के प्रिण्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के तमाम 'विशेषज्ञ' अटकलें लगा रहे थे कि माओवादियों को चुनाव में 8-10 प्रतिशत से ज्यादा वोट मिलने की भी सम्भावना नहीं है। यही नहीं, लगातार इस बात को लेकर भी आशंकाएँ जताई जा रही थी कि चुनाव सम्पन्न हो भी सकेंगे या नहीं। लेकिन चुनाव में क्रान्तिकारी शक्तियों की अभूतपूर्व सफलता के बाद ऐसी सभी जुबानों पर ताला लग गया। गौरतलब है कि संविधान सभा चुनाव में नेपाली कांग्रेस की भारी पराजय और ने.क.पा. (माओवादी) के सबसे अधिक सीटें हासिल करने के बावजूद गिरिजा प्रसाद कोइराला सत्ता से चिपके रहे। माओवादियों को सत्ता में आने से रोकने के लिए नेपाली कांग्रेस ने सभी बुर्जुआ एवं संशोधनवादी पार्टियों (मुख्यतः नेकपा (एमाले)) को साथ लेने की हर चन्द कोशिश भी की, लेकिन इन सभी बुर्जुआ दलों के आपसी अन्तरविरोध के कारण इनका कोई टिकाऊ संयुक्त मोर्चा अस्तित्व में नहीं आ सका।

इस सब के बीच 28 मई, 2008 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई जिसमें राजतन्त्र की समाप्ति और संघात्मक जनवादी गणराज्य की घोषणा की गई। इसके बाद जनदेश के

दबाव में और पूरे देश में हवा का रूख देखते हुए प्रधानमन्त्री कोइराला को जून 2008 के अन्त में अन्ततोगत्वा अपने इस्तीफे की घोषणा करनी पड़ी। लेकिन इसके पहले नेकपा (एमाले) और अन्य बुर्जुआ पार्टियों के सहयोग से नेपाली कांग्रेस दो तिहाई बहुमत से प्रधानमन्त्री को हटाय जाने के प्रावधान को अन्तरिम संविधान से हटाने में कामयाब रही। इसका मतलब यह था कि अब प्रधानमन्त्री को सामान्य बहुमत से भी हटाया जा सकता था।

इसके पश्चात जुलाई 2008 में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और संविधान सभा के अध्यक्ष पद के लिए नेपाली कांग्रेस, नेकपा (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फोरम के बीच तमाम किस्म की सौदेबाजी और सत्ता के लिए बन्दरबॉट देखने को मिली। उपरोक्त तीन पदों पर माओवादी उम्मीदवारों की पराजय के पश्चात नेकपा (माओवादी) ने सरकार बनाने के बजाय, विपक्ष में बैठने का निर्णय लिया। इस फैसले से एमाले और मधेसी जनाधिकार फोरम पर दबाव बढ़ा। उन्हें फिर से जनयुद्ध का भूत सताने लगा। परिणामस्वरूप, अगस्त में नेकपा (माओवादी) के साथ सरकार बनाने के लिए नेकपा (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फोरम तैयार हो गये। नेकपा (एकता केन्द्र) जिसके साथ नेकपा (माओवादी) की एकता प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ रही थी, का कानूनी मोर्चा— जनमोर्चा, नेपाल—पहले से ही साथ था। इनके अलावा नेकपा (मा-ले), नेकपा (संयुक्त) और सद्भावना पार्टी (राजेन्द्र महतो) भी सरकार में शामिल होने को तैयार हो गये। संविधान सभा के चुनावों के ठीक चार महीने बाद, कुल 25 में से 21 पार्टियों के समर्थन से, 80 प्रतिशत मत हासिल करके माओवादी पार्टी के नेता पुष्प कमल दहल 'प्रचण्ड' संघात्मक जनवादी गणराज्य नेपाल के पहले प्रधानमंत्री बने।

वहीं दूसरी ओर, हाल ही में नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) और नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एकता केन्द्र) के बीच लम्बे समय से जारी एकता-प्रक्रिया का 13 जनवरी, 2009 को एक जनसभा में एकता की सार्वजनिक घोषणा के बाद सफल समापन हो गया। नयी पार्टी का नाम एकीकृत नेकपा (माओवादी) रखा गया। नेपाली कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के इन दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटकों की एकता नेपाली जनता और पूरे समाज की प्रगति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कम्युनिस्ट

क्रान्तिकारियों की एकता ने नेपाल की आम मेहनतकश जनता के भीतर नये उत्साह और नयी आशाओं का संचार किया है। जनता की आकांक्षाओं-अपेक्षाओं की कसौटी पर नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी किस हद तक खरे उतरेंगे, इस प्रश्न का उत्तर तो अभी भविष्य के गर्भ में है।

निश्चय ही, राजतन्त्र की समाप्ति और संघात्मक जनवादी गणराज्य की घोषणा के साथ माओवादियों के नेतृत्व में नयी अन्तरिम सरकार का गठन नेपाल में जारी जनवादी क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण अगला मुकाम है। लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि राजशाही के खात्मे के बावजूद राज्यतन्त्र के ढाँचे और वर्गचरित्र में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है। राज्यसत्ता का मुख्य अंग अभी भी वही सेना है, वही नौकरशाही और वही न्यायपालिका है। मीडिया पर भी मुख्यतः बर्जुआ ताकतें ही हावी हैं। उधर, क्रान्तिकारी भूमि सुधार का काम अभी भी पूरा नहीं हुआ है। भूस्वामी वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी इस समय नेपाली कांग्रेस और अन्य बर्जुआ दल कर रहे हैं। साथ ही, आज की विश्व परिस्थितियों और नेपाल की ठोस परिस्थितियों में नेपाली पूँजीपति वर्ग को भी दलाल और राष्ट्रीय के परस्पर-विरोधी प्रवर्गों में नहीं बाँटा जा सकता। जहाँ एक ओर नेपाल का बड़ा पूँजीपति वर्ग और बड़ा व्यापारी वर्ग अपने चरित्र से अत्याधिक प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवाद-परस्त है, वहीं छोटा पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद से सीमित आजादी की आकांक्षा रखता है और देश में पूँजीवादी विकास का भी पक्षधर है। नेकपा (एमाले) जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ और क्षेत्रीय बर्जुआ पार्टियाँ मध्य वर्ग के साथ ही इन छोटे पूँजीपतियों की भी नुमाइन्दगी कर रही हैं। जहाँ तक भूस्वामियों का प्रश्न है, नेपाली कांग्रेस और तराई की मधेस पार्टियाँ पुराने भूस्वामियों के साथ ही उन नये बर्जुआ भूस्वामियों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं जो सीमित स्तर पर पूँजीवादी भूमि सम्बन्धों के विकास के साथ नेपाल में पैदा हो चुके हैं। यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि नेपाली कांग्रेस से लेकर नेकपा (एमाले), नेकपा (माले) जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ तक की पूँजीवादी रास्ते के प्रश्न पर कमोवेश आम सहमति ही है।

इसके साथ ही यदि हम नेपाल की सामाजिक-आर्थिक संरचना पर भी एक नजर डालें तो कई बातें साफ होंगी। नेपाल मात्र 2 करोड़ 90 लाख आबादी वाला भूआवेष्टित (चारों ओर

ज़मीन से घिरा) देश है, जहाँ बुनियादी एवं अवरचरणागत उद्योगों का विकास अत्यन्त कम हुआ है तथा अर्थव्यवस्था बहुत कम विविधीकृत (डायवर्सिफाइड) है। देश की 85 फीसदी आबादी गाँवों में बेहद विपन्न जीवन बिताती है। साक्षरता 50 प्रतिशत से भी कम है। कुपोषण आम बात है और बाल मृत्यु की दर 1000 में 62 है। एक तिहाई आबादी सरकारी गरीबी रेखा के नीचे जीती है और लगभग आधा देश बेरोजगार है। दसियों लाख गरीब नेपाली भारत में, खाड़ी के देशों में और दूसरे देशों में मजदूरी करते हैं तथा भारत और ब्रिटेन की सेनाओं में भाड़े के सिपाही के तौर पर काम करते हैं। इनकी कमाई और पर्यटन उद्योग नेपाल के विदेशी मुद्रा भण्डार का मुख्य स्रोत है।

आम जनता की इन्हीं भीषण जीवन स्थितियों ने नेपाल में जनसंघर्ष के लिए अनुकूल वस्तुगत आधार तैयार किया। साथ ही, राजशाही के निरंकुश दमन तन्त्र और राजनीतिक जीवन में सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार ने आग में घी डालने का काम किया। इसलिए, इस मायनों में संविधान सभा में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का सबसे बड़ी ताकत बनकर उभरना और माओवादियों का सरकार बनाना, दोनों ही नेपाली जनता की ऐतिहासिक जीत है। हालाँकि यहाँ से ही अब चुनौतियों का एक नया दौर भी शुरू होता है। जहाँ एक ओर अनेक राष्ट्रीयताओं-उपराष्ट्रीयताओं की अपेक्षाओं को पूरा करने, मधेस के जटिल सवाल को हल करने तथा क्रान्तिकारी भूमि सुधार को हाथ में लेने का काम है, वहीं दूसरी तरफ नेपाल की राष्ट्रीय सम्प्रभुता का विस्तार करने, विश्व बैंक सहित तमाम साम्राज्यवादी वित्तीय एजेंसियों की जकड़बन्दी तोड़ने तथा राज्य व्यवस्था और समाज के पुनर्गठन का एजेण्डा भी माओवादी सरकार के सामने है। उधर, संविधान सभा में स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने से सरकार चलाने में क्रान्तिकारी ताकतों की निर्भरता बनी रहेगी। इसके साथ ही, संविधान निर्माण के अधिकांश मुद्दों पर आवश्यक दो-तिहाई बहुमत नहीं होने से भी उनके हाथ कुछ बंधे रहेंगे। इसमें कोई शक नहीं है कि नेपाली क्रान्तिकारियों के सामने चुनौतियाँ बहुत कठिन हैं, लेकिन इतिहास भी इस बात का गवाह है कि प्रतिकूलतम परिस्थितियाँ भले ही जनता के संघर्षों की राह को दुर्गम, लम्बा और जटिल बना दें, पर उनका गला नहीं घोट सकतीं।

## VkVk d h d kyh dj rwa

### (पेज 9 से जारी)

नहीं है कि सस्ती या जनता की कार में सबसे ज्यादा दिलचस्पी पूँजीवाद के संकटमोचक फासीवाद के अवतारों ने दिखलायी है। जर्मनी में भी हिटलर ने बदहाल जनता को सस्ती फोक्सवैगन कार का सपना दिखाकर अपना समर्थक बनाने की कोशिश की थी। लेकिन अंततः हिटलर का क्या हुआ उससे आप सभी वाकिफ होंगे। इतिहास गवाह है कि दमन ने प्रतिरोध को हमेशा जन्म दिया है। हमारे समाज में जो नग्न किस्म का शोषण जारी है उसके

खिलाफ मेहनतकश अवाग जागेगा। दुनिया भर में हमेशा ऐसा हुआ है और आगे भी ऐसा ही होगा क्योंकि

**ये जो धूल बैठी है चीजों पर,**

**इसे बैठना ही है, क्योंकि यह उड़ चुकी है**

**यह झाड़ी जायेगी, सभी महाद्वीपों की चादरों से**

**और ये दुनिया बड़ी तरतीब के साथ**

**नई सदी में जा गिरेगी।**

— शशि प्रकाश

## खेलोगे-कूदोगे हगे खराब...

fnYyh fo' ofo | ky; e8 e8Vj i zkkyh ykxw

### ● काजल

दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं को “किताबी कीड़ा” बनाने की नयी कवायद शुरू हो चुकी है। विश्वविद्यालय कुलपति के प्रस्ताव के अनुसार नये सत्र से स्नातक सत्र के पाठ्यक्रमों में जे.एन.यू. और आई.आई.टी. जैसे संस्थानों के तर्ज पर सेमेस्टर प्रणाली लागू की जायेगी। मतलब यह कि अब स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं को शैक्षणिक सत्र के अन्त में एक बार परीक्षा न देकर साल में दो बार परीक्षाएँ देनी होगी। कुलपति महोदय, छात्रों पर पहले ही इन्टर्नल असेसमेन्ट (आन्तरिक मूल्यांकन) के तहत होने वाली परीक्षाओं का बोझ क्या कम है, कि आप उन पर सेमेस्टर प्रणाली का भार भी थोप रहे हैं? सोचने वाली बात है कि आखिर विश्वविद्यालय प्रशासन ऐसा कर क्यों रहा है? क्यों वह पूरे साल छात्रों को अपने पाठ्यक्रमों से बाँध देना चाहता है? ऐसा करने के पीछे की मुख्य वजह क्या है?

अगर खुद प्रशासन की सुनें तो वह मानता है कि सेमेस्टर प्रणाली के लागू हो जाने से छात्र अपने पाठ्यक्रमों पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर पायेंगे और पढ़ाई के प्रति उनका रवैया ज्यादा संजीदा होगा। दूसरे, इस प्रणाली के चलते वे कक्षाओं में नियमित रूप से आयेंगे जिससे अनुपस्थिति-दर कम हो जायेगी। तीसरा, भारत के कई अग्रणी शैक्षणिक संस्थानों जैसे कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय एवं आई.आई.टी. में सेमेस्टर प्रणाली को सफलतापूर्वक लागू किया गया है, तो फिर इस संदर्भ में दिल्ली विश्वविद्यालय क्यों पीछे रहे। प्रशासन का यह भी कहना है कि सेमेस्टर प्रणाली उच्च शिक्षा के भूमण्डलीकरण की तरफ एक लम्बा डग होगा। उनके मुताबिक दुनिया भर के शिक्षा जगत में अमेरिकी शिक्षा प्रणाली का ही बोलबाला है और इसलिए दिल्ली विश्वविद्यालय को ऐसे कदम का स्वागत करना चाहिए।

वहीं दूसरी तरफ दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ (डूटा) ने इस प्रस्ताव का जमकर विरोध किया है। शिक्षक संघ के अनुसार सेमेस्टर प्रणाली को लागू करने का निर्णय मनमानी है और इसे कतई बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। डूटा के अध्यक्ष आदित्य नारायण मिश्र का कहना है कि कुलपति बिना किसी पूर्व सूचना तैयारी के इस प्रस्ताव को मनमाने ढंग से थोपने पर तुले हैं। उनके मुताबिक दिल्ली विश्वविद्यालय में सेमेस्टर प्रणाली सम्भव ही नहीं है। जब अभी साल में एक बार परीक्षा होने पर नतीजों के आने में चार-पाँच माह लग जाते हैं, तो ऐसे में दो बार परीक्षा करा पाना कितना व्यवहारिक है? साफ है कि शिक्षक संघ की आशंकाएँ इस प्रणाली की व्यवहारिकता को लेकर है। लेकिन यहाँ प्रश्न केवल सेमेस्टर प्रणाली के लागू किये जाने की व्यवहारिकता-मात्र का नहीं है।

सेमेस्टर प्रणाली को लागू करने के पीछे की असली मंशा

क्या है? बात एकदम साफ है, यह एक और कदम है पढ़ाई और पाठ्यक्रम के नाम पर छात्रों को यथास्थितिवादी बनाने का, उन्हें किताबों की चौहद्दी में कैद करके देश, दुनिया, समाज के बारे में सोचने से रोकने का। जब विद्यार्थी पूरा साल अंकों, ट्यूटोरियल, असाइनमेन्ट और परीक्षाओं के चक्कर में ही रहेंगे, तो वाकई में किसी और चीज के बारे में सोच कैसे पायेंगे? हम सभी विश्वविद्यालय में प्रवेश के महत्व को भली-भाँति जानते हैं। स्कूली शिक्षा और अनुशासन से बिल्कुल अलग यह एक नई दुनिया होती है—आज़ादी की, जनवाद, स्वावलम्बन, आत्मविश्वास की, स्वयं निर्णय लेने की ताकत की। इसी दुनिया में हम कई नये लोगों, कई नये विचारों और ज़िन्दगी जीने के कई नये तरीकों से मुखातिब होते हैं। एक कोर्स के पाठ्यक्रम को पढ़ते हुए हमारे भीतर अन्य विषयों के बारे में जानने की भी इच्छा होती है। और ऐसा होना भी स्वाभाविक है। फिर क्यों कोई गणित या भौतिक विज्ञान का छात्र इतिहास, साहित्य, समाजशास्त्र, दर्शन शास्त्र के विषय में न जाने? लेकिन नई प्रणाली के अन्तर्गत ऐसा हो पाना काफी मुश्किल होगा। छात्र-छात्राएँ पूरा साल अपने कोर्स की पढ़ाई करते-करते ही घिस जायेंगे, अन्य चीजों को जानने-समझने का तो बस सपना-भर देख पायेंगे।

विश्वविद्यालय छात्र-युवा राजनीति का मंच भी होता है। इस मायने में उपरोक्त प्रणाली छात्र राजनीति के क्रान्तिकारीकरण में बाधा डालने का नया ज़रिया है। इसका असली मकसद सीधे-सीधे छात्र-छात्राओं के क्रान्तिकारी राजनीतिकरण को बाधित करना है, उसे रोकना है। पूरा दिन छात्रों को कक्षा और पढ़ाई में उलझाए रखने के पीछे की मंशा ही यही है। प्रशासन का इरादा साफ है—जब तक छात्रों के सर पर समय से ट्यूटोरियल जमा करने या फिर परीक्षाओं में बैठने की तलवार लटक रही, तब तक उनके पास देश और समाज के मौजूदा हालात पर या फिर उन्हें बदलने के बारे में सोचने की फुरसत ही नहीं रहेगी। ज़ाहिरा तौर पर कैम्पसों के भीतर होने वाली गन्दी, चुनावबाज पूँजीवादी छात्र राजनीति के बरक्स एक कारगर क्रान्तिकारी विकल्प का मॉडल खड़ा करने के लिए छात्रों को संघर्ष में शामिल होना होगा, उन्हें संगठित होना होगा। और एक हद तक यह तब सम्भव है जब उन्हें सुबह-शाम, रात-दिन कोल्हू के बैल की तरह अपने पाठ्यक्रमों से बाँध कर न रखा जाये। हालाँकि विश्वविद्यालय प्रशासन यहाँ पर थोड़ा से गच्चा खा गया—समय की मौजूदगी फुरसत से तय नहीं होती, ज़रूरत से तय होती है। आज छात्रों-युवाओं को किस चीज की ज़रूरत है, उन्हें यह समझने से कोई सेमेस्टर प्रणाली नहीं रोक सकती। हाँ, थोड़ी बाधा ज़रूर पैदा करेगी। छात्रों को इसका पुरजोर विरोध करने की ज़रूरत है।

# क्यों है ऐसा पाकिस्तान?

● अभिनव

बेनज़ीर भुट्टो की हत्या, ज़रदारी की सरकार के बनने और मुम्बई आतंकवादी हमलों के बाद से पाकिस्तान भारत ही नहीं पूरी दुनिया के मीडिया में सुर्खियों में है। पाकिस्तान की व्याख्या एक असफल राज्य के रूप में बार-बार की जा रही है और उसे आतंकवाद के वैश्विक केन्द्र के रूप में चित्रित किया जा रहा है। एक ओर जहाँ पाकिस्तान के अन्दरूनी राजनीतिक संकट की बात हो रही है तो वहीं दूसरी ओर पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती राज्यों और विशेषकर स्वात घाटी में तालिबान के पैर जमाने की चर्चा हो रही है। कहा जा रहा है कि पाकिस्तान की नागरिक सरकार देश पर अपना नियंत्रण खोती जा रही है और उसने सेना और तालिबान के गठजोड़ के सामने घुटने टेक दिये हैं। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान पर बनाए जा रहे दबाव को हमारे देश का मीडिया हर्षोन्माद के साथ सूचित कर रहा है। यह लेख लिखे जाने के समय ही अमेरिका ने पाकिस्तान को 2 हफ्ते का समय दिया है कि वह पाकिस्तान से तालिबान का सफ़ाया कर दे। साथ ही, पाकिस्तान को लेकर दुनिया भर में और खासकर भारत में एक भय पैदा किया जा रहा है कि आतंकवाद के समक्ष हथियार डाल देने के साथ ही पाकिस्तान विश्व भर में शान्ति के लिए एक खतरा बन गया है और यह पूरे विश्व समुदाय के लिए चिन्ता का विषय है। ऐसे माहौल में यह समझना बेहद ज़रूरी हो गया है कि पाकिस्तान का संकट आखिर है क्या? क्या पाकिस्तान अभी ऐसा हो गया है या फिर उसके ऐसा होने के कारण उसके इतिहास में निहित हैं? मीडिया द्वारा भय की राजनीति में सच कितना है और झूठ कितना? यह समझना समाज और जनता से सरोकार रखने वाले हर नौजवान और नागरिक के लिए बेहद ज़रूरी है।

पाकिस्तान के संकट को समझने के लिए ज़रूरी है कि हम इस पड़ोसी मुल्क के इतिहास पर एक संक्षिप्त निगाह डालें। इसके अतिरिक्त, मौजूदा संकट के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल करना भी वांछित है। पाकिस्तान की पूरी राजनीति में सेना के हस्तक्षेप का कारण क्या है? यह समझना भी आवश्यक है। पाकिस्तान में राज्य, सेना और वहाँ के शासक पूँजीपति वर्ग के बीच के रिश्ते क्या हैं? वहाँ जनता के आन्दोलनों की क्या स्थिति है? ये कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके उत्तर के बिना हम पाकिस्तान के संकट की एक सन्तुलित समझदारी नहीं बना सकते हैं। साथ ही, इस पर विचार करना भी मौजूँ होगा कि इस संकट का समाधान क्या है।

आगे बढ़ने से पहले पाकिस्तान की हालिया घटनाक्रम पर एक निगाह डाल ली जाय। जून 2008 में पाकिस्तान के विभिन्न

शहरों में हज़ारों की संख्या में लोगों ने बढ़ती महँगाई के विरुद्ध प्रदर्शन किया। ज्ञात हो कि पाकिस्तान की पूरी अर्थव्यवस्था 2006 से ही भयंकर संकट का शिकार है; इस हद तक कि वह दिवालियेपन की कगार पर पहुँच गयी थी। इन प्रदर्शनों के बाद पाकिस्तान के विभिन्न शहरों में विरोध प्रदर्शनों का एक सिलसिला शुरू हो गया। इन प्रदर्शनों में मेहनतकश वर्गों, बुद्धिजीवियों, छात्रों-नौजवानों और महिलाओं ने बड़े पैमाने पर शिरकत की। यहाँ उठाये जाने वाले मुद्दों में महँगाई, जनवादी अधिकार, मुशर्रफ़ द्वारा हटाये गये न्यायाधीशों की बहाली के वायदे को ज़रदारी सरकार द्वारा पूरा किया जाना, अमेरिकी हस्तक्षेप का विरोध, बेरोज़गारी भत्ते देना, छँटनी बन्द करना और न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ाये जाने के मुद्दे प्रमुख थे। वकील भी इन प्रदर्शनों के समर्थन में सड़कों पर उतरने लगे थे। बाद में नवाज़ शरीफ़ पर से नज़रबन्दी हटाने और न्यायाधीश चौधरी को वापस लाने की माँग को लेकर पूरे देश में एक ज़बर्दस्त आन्दोलन हुआ। इस आन्दोलन की अगली कतारों में वकील और बुद्धिजीवी थे लेकिन साथ ही अपनी माँगों को लेकर नौजवानों और मज़दूरों ने भी बड़ी संख्या में इसमें हिस्सेदारी की। मज़दूरों का गुस्ता पाकिस्तान में लगातार बढ़ रहा है और जगह-जगह उनके विद्रोह फूट रहे हैं। 12 मार्च 2008 को सिंध में मज़दूरों ने एक चीनी कारखाने पर कब्ज़ा कर लिया था। इस प्रकार की कई घटनाएँ पाकिस्तान के विभिन्न हिस्सों में घट रही थीं और अभी भी घट रही हैं। वकीलों के आन्दोलन को मज़दूरों के समर्थन से काफी ताक़त मिली और अन्ततः पाकिस्तान की सरकार को समझौता करने पर मजबूर होना पड़ा। ज़रदारी की सरकार इस संकट के अलावा एक दूसरे संकट से भी जूझ रही है और एक अनिर्णय की स्थिति में पड़ी हुई है। पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी की सरकार यह तय नहीं कर पा रही है कि धार्मिक कट्टरपंथियों के साथ कैसा बर्ताव किया जाय। उसे धार्मिक कट्टरपंथियों के साथ एक अजीब सा सम्बन्ध बरकरार रखना पड़ रहा है। बेरोज़गारी, ग़रीबी और महँगाई जैसी अन्दरूनी समस्याओं पर जनता का ध्यान हटाने के लिए उसे धार्मिक कट्टरपंथियों और भारत-विरोधी अन्धराष्ट्रवादी भावना को पनपाने की ज़रूरत है। इसके लिए वह धार्मिक कट्टरपंथियों के साथ एक अपवित्र गठबन्धन को चला रही है। वह उनके खिलाफ़ कोई सख़्त कार्रवाई करने से डरती और बचती है। पाकिस्तानी राज्य को हमेशा से ही धार्मिक कट्टरपंथियों की ज़रूरत इस काम के लिए पड़ी है और आज भी पड़ रही है। जिन्ना एक आधुनिकतावादी सेक्युलर बुर्जुआ राजनीतिज्ञ था और उसने हमेशा राज्य के मामलों को धर्म से अलग रखने की वकालत

की थी। लेकिन 1948 में जिन्ना की मृत्यु के बाद, बल्कि उससे पहले ही जिन्ना की इस नसीहत को सुनने वाला पाकिस्तान में कोई नहीं बचा था। पूँजीवादी राजनीति की ठोस ज़रूरतें इस प्रकार के आदर्शवाद की इजाज़त नहीं देती थीं और पाकिस्तान के शासक इस बात को अच्छी तरह से समझते थे। भारत-विरोधी भावना की राजनीति अपने जन्म से ही पाकिस्तानी पूँजीवाद की ज़रूरत थी। भारत को भी पाकिस्तान-विरोधी भावना की राजनीति की ज़रूरत थी लेकिन भारत का पूँजीवाद अन्दर से ज़्यादा मज़बूत था और उसकी इस राजनीति पर निर्भरता उस हद तक नहीं थी जिस हद तक पाकिस्तानी पूँजीवाद की थी। इस ज़रूरत को पूरा करने का सबसे बड़ा उपकरण धार्मिक उन्माद ही था और यही कारण है कि पाकिस्तान के जन्म से लेकर आज तक धार्मिक कट्टरपंथियों का राज्य के साथ एक गहरा सम्बन्ध रहा है। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह एक आपसी समझदारी और फायदों की इज़्ज़त करने के आधार पर बना रिश्ता रहा है। लेकिन एक दूसरा दबाव पाकिस्तान के शासक वर्ग पर 1990 के दशक के मध्य से काम कर रहा है जिसके कारण धार्मिक कट्टरपंथियों के साथ लम्बे समय से चल रहा उनका हनीमून संकटग्रस्त हो गया है। यह दबाव है विश्व साम्राज्यवाद का, जिसका मुखिया द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से ही संयुक्त राज्य अमेरिका है। सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद से प्रतिस्पर्द्धा के दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने इस्लामी धार्मिक कट्टरपंथ को स्वयं पनपाया, उसका पालन-पोषण किया और उसे हथियारों और धन की आपूर्ति की। 1990 में सोवियत संघ के विघटन और सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के खत्म होने और अमेरिकी साम्राज्यवाद के नेतृत्व के बिना किसी बड़ी चुनौती के उभरने के साथ इस्लामी कट्टरपंथ की ज़रूरत थोड़ी कम हो गई। दूसरी बात यह थी कि इस्लामी कट्टरपंथ को अमेरिकी संरक्षण ज़रूर मिला था लेकिन उसके बाद उसका विकास अपनी गति और अपने स्वाभाविक तर्क के साथ हुआ। इस विकास की दिशा में अमेरिकी साम्राज्यवाद के हित अब किनारे लगने लगे। सन् 2000 आते-आते अमेरिकी साम्राज्यवाद की ज़रूरतें और मध्य-पूर्व और अफ़गानिस्तान व पाकिस्तान में इस्लामी कट्टरपंथियों की ज़रूरतें अलग-अलग होने लगी थीं। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने एक ऐसा राक्षस पैदा किया था जो अब उसके हाथ से निकल चुका था। उसके अपने हित और उसका अपना स्वायत्त अस्तित्व इतना मज़बूत हो चुका था कि अब वह अमेरिकी हितों की परवाह नहीं करता था और इसी ने इन दोनों के बीच एक असाधेय अन्तरविरोध को जन्म दिया। इसके विस्तार में हम आगे जाएँगे। आज की सच्चाई यह है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद और इस्लामी धार्मिक कट्टरपंथियों के हित अलग हो चुके हैं और वे विरोधी शिविरों में खड़े हैं। वैश्विक राजनीति समीकरणों में इस परिवर्तन के कारण पाकिस्तानी शासक वर्ग के सामने एक संकट पैदा हो गया है। राज्य और धार्मिक कट्टरपंथियों के बीच के जिस गठजोड़ को पहले अमेरिकी साम्राज्यवाद का अनुमोदन और समर्थन प्राप्त था अब वह खत्म हो गया है। अमेरिकी साम्राज्यवाद पाकिस्तानी शासक वर्गों और राज्य पर लगातार यह दबाव डाल रहा है कि वह तालिबान और

अल-कायदा के नेटवर्क का ख़ात्मा करे क्योंकि अफ़गानिस्तान में तालिबान पर विजय पाना काफ़ी कुछ इसी बात पर निर्भर करता है। लेकिन पाकिस्तान में जिस प्रकार के सम्बन्ध राज्य और धार्मिक कट्टरपंथियों में विकसित हो चुके हैं वे अब अमेरिका के ताव और चाहत पर नहीं बदले जा सकते; उसके कारण पूरे देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था डावाँडोल हो जाएगी। पाकिस्तानी शासक वर्ग को दिवालियेपन की कगार से बचने के लिए अमेरिकी वित्तीय सहायता की ज़रूरत है और इसलिए वह अमेरिका की चाहत की अनदेखी भी नहीं कर सकता और देश के राजनीतिक समीकरणों की जो स्थिति है उसके चलते वह तालिबान के खिलाफ़ निर्णायक कदम भी नहीं उठा सकता। यही वह दुविधा है जिसमें ज़रदारी की सरकार फँसी हुई है और एक अनिर्णय की स्थिति में चली गयी है। कभी वह अमेरिका को कहती है कि वह शर्तें नहीं थोप सकता; दूसरी तरफ़, जब अमेरिका बाँह मरोड़ता है तो वह ड्रोन हमलों की इजाज़त भी देती है और स्वयं भी कुछ दिखावे की सैन्य कार्रवाई करती है। पाकिस्तान के इस संकट को और गहराई से समझने के लिए सबसे पहले उसके आर्थिक हालात पर एक निगाह डाल ली जाय।

## असमाधेयता के भँवर में फँसी पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था

2008 की शुरुआत से ही पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था पर दिवालिया होने का खतरा मंडराने लगा था। संकट की शुरुआत तो दरअसल 2007 में ही हो चुकी थी जब सबप्राइम संकट अपने चरम पर था और अमेरिका से लेकर यूरोप तक के विशालकाय बैंक एक-एक करके औंधे मुँह गिर रहे थे। इसी संकट की प्रतिध्वनियाँ पाकिस्तान में भी सुनाई दे रही थीं। 2008 आते-आते पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था का संकट अपने चरम पर पहुँच चुका था। 16 नवम्बर को अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने पाकिस्तान को 7.9 अरब डॉलर का कर्ज़ देने को मंजूरी दी। यह कर्ज़ 5 प्रतिशत ब्याज़ दर पर दिया जा रहा है। ज्ञात हो कि आम तौर पर अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष 3 प्रतिशत ब्याज़ दर पर कर्ज़ देता है। लेकिन पाकिस्तान को यह कर्ज़ कड़ी शर्तों और अधिक ब्याज़ दर पर दिया गया। पाकिस्तान सरकार को इस कर्ज़ को चुकता करने के लिए पाकिस्तानी जनता पर 100 अरब रुपये के नये कर थोपने पड़ रहे हैं। जाहिर है कि इसका सबसे अधिक बोझ अप्रत्यक्ष करों के रूप में देश की मेहनतकश जनता पर डाला गया है। पाकिस्तान का कुल विदेशी कर्ज़ 36 खरब रुपये तक पहुँच चुका है। कर्ज़ की हालत यह है कि पाकिस्तान के राष्ट्रीय बजट का लगभग 25 प्रतिशत हिस्सा विदेशी कर्ज़ चुकता करने में ही चला जा रहा है। इसके अलावा 25 प्रतिशत हिस्सा रक्षा पर अनुत्पादक खर्च के रूप में चला जाता है। इस तरह 50 प्रतिशत बजट तो कर्ज़ चुकाने और रक्षा पर खर्च हो जाता है। तेल और बिजली पर दी जाने वाली सब्सिडी पाकिस्तान में पहले ही बेहद कम थी—बजट का मात्र 7.9 प्रतिशत। इसे अब और घटाया जा

रहा है। ये सभी अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा थोपी गयी शर्तों का ही हिस्सा है। इस कटौती के कारण तेल और बिजली की कीमतों में तेज़ी से बढ़ोत्तरी आई है। सबसे पहले तो बिजली और तेल की कीमतों में 70 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। यह वह समय था जब विश्व बाज़ार में तेल की प्रति बैरल कीमतें तेज़ी से बढ़ी थीं। लेकिन आज के समय में, जब तेल की कीमत काफी नीचे आ चुकी है तब भी पुराने स्तर से तेल की कीमत पाकिस्तान में 13 प्रतिशत अधिक ही है। यही हाल बिजली की कीमतों का है। पाकिस्तान की सरकार साम्राज्यवादी वित्तीय एजेंसियों के दबाव में एक-एक करके सभी सार्वजनिक उद्यमों को औने-पौने दामों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बेच रही है। अभी हाल ही में एक बहुत बड़े प्राकृतिक गैस फील्ड को बेचने का प्रयास किया गया। लेकिन वहाँ मज़दूरों के प्रतिरोध के कारण पाकिस्तान सरकार को कदम पीछे हटाने पड़े। पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था पर कुल कर्ज़ अभी करीब 70 खरब रुपये है। इसमें से 34 खरब रुपये आंतरिक कर्ज़ है और 36 खरब रुपये विदेशी कर्ज़। विदेशी मुद्रा भण्डार अक्टूबर 2008 के 16.5 अरब डॉलर से घटकर 7 अरब डॉलर से भी नीचे आ चुका है। व्यापार और चालू खाता घाटा भी लगातार बढ़ रहा है। बजट घाटा 2008 में सकल घरेलू उत्पाद के 7.4 प्रतिशत तक पहुंच चुका था, यानी 777 अरब डॉलर। इसके कारण विकास कार्यक्रमों में, जिनके कारण रोज़गार पैदा हो सकते थे, 75 अरब रुपये की कटौती करनी पड़ी है। राजस्व प्राप्त जो 2006 में सकल घरेलू उत्पाद का 14.9 प्रतिशत था, 2008 में घटकर 14.3 प्रतिशत रह गया। इन सारे घाटों को पूरा करने के लिए पाकिस्तान सरकार को पाकिस्तान के इतिहास का विशालतम बैंक कर्ज़ लेना पड़ा—625 अरब रुपये!

एक कृषि प्रधान देश होने के बावजूद पाकिस्तान को आज अपने सभी बुनियादी खाद्यान्न का आयात करना पड़ रहा है। कारण यह है कि 2005 में कृषि विकास दर 6.5 प्रतिशत थी जो 2008 में घटकर 1.5 प्रतिशत रह गयी। दूसरी ओर, मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर में भी अब तक की सबसे कम विकास दर को दर्ज किया गया है। हालाँकि विश्वव्यापी आर्थिक संकट के प्रभाव से निपटने के लिए स्टेट बैंक ऑफ पाकिस्तान ने एक बेल आउट प्लान निकाला है जो 270 अरब रुपये का है। लेकिन इस योजना का हथ भी वही हो रहा है जैसा अमेरिका और ब्रिटेन में ऐसी योजनाओं का हो चुका है। उद्योगों की हालत खस्ता है। कराची के कपड़ा उद्योग का 45 प्रतिशत हिस्सा बन्द हो चुका है। जनसंख्या का आधा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे जी रहा है। मुद्रास्फीति में करीब 33 प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है। एक अमेरिकी प्रतिष्ठान *इण्टरनेशनल रिपब्लिकन इंस्टीट्यूट* द्वारा किये गये सर्वेक्षण में करीब 80 फीसदी पाकिस्तानियों ने महँगाई और गरीबी को सबसे भयंकर संकट माना है। बिजली के तेज़ी से निजीकरण के कारण एक बड़ी आबादी की पहुंच से यह दूर हो चुकी है। दूसरी ओर पाकिस्तान अपनी ज़रूरत से करीब 6000 मेगावाट कम बिजली पैदा कर पा रहा है। इस कारण से छोटे उद्योग तेज़ी से तबाह हुए हैं और मज़दूर बड़े पैमाने पर बेरोज़गार हुए हैं। वित्तीय संकट कराची स्टॉक एक्सचेंज के

शेयरों के दामों में साफ़ नज़र आ रहा है। कराची स्टॉक एक्सचेंज के शेयरों की कीमतें पिछले वर्ष से 50 प्रतिशत नीचे आ चुकी हैं।

यह है पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था के हालात। हर सम्भव आर्थिक समस्या का पाकिस्तान इस समय शिकार है। चाहे उद्योग-धन्धों की बात हो या कृषि की; बेरोज़गारी और गरीबी की बात हो या फिर महँगाई की; ऊर्जा संकट की बात हो या वित्तीय संकट की; हर मोर्चे पर पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था की हालत खस्ता नज़र आ रही है। ऐसे में अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा मिला ऋण किसी काम नहीं आया और अब पाकिस्तान को फिर से संकट से उबरने के लिए 4 अरब डॉलर के पैकेज की सख़्त ज़रूरत है, जो अमेरिका अपनी शर्तों पर दे सकता है। अर्थव्यवस्था की यह हालत पाकिस्तान के हर कदम को काफी हद तक तय कर रही है। चाहे वह तालिबान के तुष्टीकरण का सवाल हो, या फिर अमेरिका के समक्ष घुटने टेकने का सवाल, और या फिर भारत-विरोधी युद्धोन्माद के इस्तेमाल का सवाल हो। पाकिस्तान की आर्थिक स्थिति कभी भी उसे राजनीतिक अस्थिरता के ऐसे दलदल में धकेल सकती है जिससे लम्बे समय तक निकल पाना मुश्किल होगा। उसे अमेरिकी मदद की ज़रूरत अपनी आर्थिक समस्याओं से बचने के लिए है, भले ही फिलहाली तौर पर। तालिबान और धार्मिक कट्टरपंथियों की ज़रूरत उसे भारत-विरोधी अन्धराष्ट्रवादी उन्माद भड़काकर जनता को इस लहर में बहाने के लिए है। इन दोनों के बीच में ही सन्तुलन करते हुए चलना आज पाकिस्तानी शासक वर्ग के लिए सबसे मुश्किल का काम बना हुआ है।

अर्थव्यवस्था के बाद दूसरा सवाल पाकिस्तानी राजनीति में सेना की भूमिका और हस्तक्षेप का है। आखिर क्यों पाकिस्तान को बार-बार सैनिक तानाशाहों का मुँह देखना पड़ता है? आखिर क्यों सैनिक सरकार न होने पर भी राजनीतिक से लेकर प्रशासनिक मामलों तक में सेना का इतना हस्तक्षेप होता है? क्यों बार-बार नागरिक सरकारें सेना के सामने घुटने टेक देती हैं? क्या इसके कारण पाकिस्तान के ऐतिहासिक विकास की विशिष्टताओं में निहित हैं? यह समझने के लिए हमें पाकिस्तान के राजनीतिक इतिहास पर एक निगाह डालनी होगी और अलग-अलग दौरों में सेना की भूमिका को भी समझना होगा।

## पाकिस्तान की राजनीति में सेना की भूमिका

एक पूँजीवादी व्यवस्था में सेना राज्य का सबसे संगठित और बल-प्रयोग का सबसे मज़बूत उपकरण होता है। पाकिस्तान में भी यह बात लागू होती है। सेना का काम होता है देश के शासक वर्ग और सम्पत्तिधारी वर्ग के विशेषाधिकारों, हितों और सम्पत्ति की रक्षा करना। जब तक यह काम राजनीतिक तौर-तरीकों से होता है तब तक उसे वैसे ही किया जाता है और जब कभी-कभी स्थिति राजनयिक प्रयासों के दायरे से बाहर निकल जाती है तो सेना और पुलिस बलों के नग्न बल का सहारा लिया

जाता है। जिन देशों में पूँजीवादी जनतंत्र का इतिहास और जड़ें गहरी होती हैं, वहाँ सेना इस काम को अप्रत्यक्ष और कम अभिव्यक्त तरीकों से अंजाम देती है। पाकिस्तान में सेना ने अपना काम ज़्यादा खुले तरीके से किया है। इस बात को समझने के लिए हम आगे पाकिस्तान के राजनीतिक इतिहास पर एक निगाह भी डालेंगे।

पाकिस्तान की राजनीति में सेना के हस्तक्षेप पर वहाँ के रैडिकल और वाम दायरों में यह बात होती रहती है कि इस दिक्कत का इलाज यह है कि सेना सुधार और पुलिस सुधार किये जाएँ। ऐसा वे इसलिए सोचते हैं क्योंकि उनके दिमाग में यह बात पैठी हुई है कि पाकिस्तान में अभी जनवाद नहीं है और जनवादी अधिकारों के लिए पहले पाकिस्तान का पूँजीपति वर्ग जनवादी क्रान्ति के कार्यभार को पूरा करेगा। इस काम के लिए उसे एक अनुशासित और नागरिक सरकार के आदेश पर चलने वाली सेना की आवश्यकता होगी। इसलिए सेना के भीतर सुधार किया जाना चाहिए। लेकिन यह सोच पाकिस्तान के भीतर एक उदार, प्रगतिशील और जनवादी बुर्जुआ वर्ग के मौजूद होने पर आधारित है, जो वास्तव में पाकिस्तान में है ही नहीं। पाकिस्तान को एक अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक देश मानने के चलते वामपन्थी हलकों में भी सेना की भूमिका को लेकर जो असुविधा और परेशानी है, उसका कोई समाधान उनके पास नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि पाकिस्तानी बुर्जुआ वर्ग और सेना के रिश्तों और इनके चरित्र की कोई स्पष्ट समझदारी मौजूद नहीं है।

पाकिस्तानी पूँजीवाद विश्व इतिहास के पटल पर बहुत देर से प्रकट हुआ। जब पाकिस्तान की रचना हुई तो उस समय वहाँ का पूँजीपति वर्ग बेहद कमज़ोर था। उसके पास इतनी ताकत भी नहीं थी कि वह शुरुआत करने के लिए आरम्भिक पूँजी जुटा पाता, यानी आदिम पूँजी संचय कर पाता। उसके पास संसाधन पैदा करने की ताकत नहीं थी। उसके पास बस एक चीज़ थी—राज्यसत्ता। इसी के बल पर उसे शुरुआत करनी थी और मौजूद संसाधनों की लूट के बूते पर पाकिस्तानी पूँजीवाद का विकास करना था। वह प्रगतिशील और जनवादी तौर-तरीकों से पूँजीवाद का विकास नहीं कर सकता था। जब-जब उसने ऐसा करने की कोशिश की तब-तब उसे संकट का सामना करना पड़ा और उस संकट से पार पाने के लिए सेना को हस्तक्षेप करना पड़ा। पाकिस्तानी पूँजीपति वर्ग शुरू से ही परजीवी था। वह पूँजीवादी विकास के लिए किसी भी किस्म की अवसंरचना का विकास कर पाने में समर्थ नहीं था। यही वह संकट था जिसके कारण अपने जन्म से लेकर आज तक पाकिस्तान कभी स्थिर नहीं हो पाया। पूँजीवादी विकास ने पाकिस्तान में एक बेहद अलग किस्म का रास्ता अख्तियार किया जिस पर हम आगे चर्चा करेंगे। लेकिन पाकिस्तानी पूँजीवाद की अस्थिरता का अन्दाज़ा इस बात लगाया जा सकता है कि मुशर्रफ़ के अन्तर्गत मौजूद पाकिस्तानी संसद पहली संसद थी जिसने अपना कार्यकाल पूरा किया! जब-जब यह राजनीतिक अस्थिरता राजनयिक प्रयासों से दूर नहीं हुई तब-तब पाकिस्तानी पूँजीपति वर्ग ने नंगी सैनिक तानाशाही का सहारा लिया और पूँजी के राज कायम रखा।

लेकिन हर ऐसे प्रयास के बाद की स्थिति और बुरी हो चुकी होती थी। सेना ने पूँजीवादी शासन की रक्षा और उसे कायम रखने के अपने कर्तव्य को पाकिस्तान में बखूबी निभाया। जब-जब यह काम सामान्य पूँजीवादी कानूनी तरीकों से नहीं हो पाता तो उसे असामान्य तरीकों से किया जाता है। सैनिक शासन ऐसा ही एक असामान्य तरीका है। पाकिस्तान जैसे संकटग्रस्त देश में यह कल्पना करना कि सेना हमेशा अपनी संवैधानिक भूमिका को नागरिक सरकार के आदेशाधीन रहकर पूरा करती रहेगा, एक ख़ामख़याली से अधिक कुछ भी नहीं होगा।

पाकिस्तान में बार-बार सैनिक तानाशाहों का आना और सैन्य तख्तापलट होने के कौन-से सामाजिक-आर्थिक कारण मौजूद रहे हैं? यह समझे बग़ैर हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसके लिए हमें थोड़ा इतिहास में जाना होगा।

अगर हम एक करीबी निगाह डालें तो हम पाते हैं कि खुली सैनिक तानाशाही पाकिस्तान के राजनीतिक इतिहास के छोटे-छोटे दौर में आई है और कुछ ही समय में नागरिक सरकार को संस्थापित करके चली गई है। इसका कारण यह है कि समाज में खुले सैनिक दमन के औज़ार को शासक वर्ग बहुत लम्बे समय तक इस्तेमाल नहीं कर पाता। यह एक ऐसा हथियार है जो इस्तेमाल के कुछ समय बाद ही भोथरा हो जाता है, अगर आपको पूँजीवादी जनवाद के तिलिस्म को बरकरार रखना है। या फिर दूसरा रास्ता खुले तौर पर स्थायी तानाशाही का है जो शासक वर्ग को फ़ौरी तौर पर सिरदर्द से मुक्त करता है लेकिन उसके लिए लम्बी दूरी में ख़तरनाक साबित होता है। यही कारण है कि पाकिस्तान में किसी भी सैनिक तानाशाह ने अपने आपको एक अस्थायी संस्था के तौर पर ही पेश किया, स्थायी इंतज़ाम के रूप में नहीं। हर सैनिक तानाशाह जल्दी से जल्दी किसी नागरिक सरकार को कार्यभार सौंप देने का प्रयास करता रहा और उसने ऐसा किया भी। कारण यह था कि नागरिक सरकार आने के बाद भी पाकिस्तान की पूँजीवादी राजनीति में सेना का दख़ल कोई कम नहीं होने वाला था। उसका दबदबा दूसरे रूपों में बरकरार रहता था। आज भी ऐसा ही हो रहा है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि सैनिक तानाशाहों ने ही न्यायपालिका की मदद से अपने आपको नागरिक शासकों में तब्दील कर लिया है। सामान्यतया, न्यायपालिका की स्थिति भी पाकिस्तान में सेना के अधीनस्थ ही बनी रही है। नतीजतन, बार-बार सैनिक तानाशाहों ने अपनी आर्थिक और सामरिक ताकत के बल पर न्यायपालिका, बुद्धिजीवी वर्ग और वकीलों समेत संवैधानिक विशेषज्ञों की मदद से अपने आपको नागरिक शासकों में बदला है। मुशर्रफ़ इसका नवीनतम उदाहरण थे। चाहे किसी नागरिक शासक को स्थापित करने के रास्ते हो या फिर सैनिक तानाशाहों के ही नागरिक शासक में तब्दील हो जाने के रास्ते हो, सैनिक तानाशाहियाँ पाकिस्तान में लम्बे समय के लिए नहीं चली हैं और नागरिक शासन वापस आया है। अयूब खान सैनिक शासन को महज़ दो वर्षों तक चला पाए। 1960 में उन्होंने नया संविधान बनाया और नागरिक शासक बन गये; 1958 में तख्तापलट के बाद भी उन्होंने कैबिनेट को रद्द नहीं किया और नागरिक मंत्रीमण्डल के साथ ही शासन जारी रखा।

याह्या खान ने भी नागरिक मन्त्रीमण्डल के साथ ही शासन किया। यहाँ तक कि सबसे कुख्यात सैनिक तानाशाह ज़िया उल हक़ ने भी नागरिक मन्त्रीमण्डल के साथ ही शासन किया। गौरतलब है कि ज़िया के फासीवादी शासन के दौरान मन्त्रीमण्डल में दक्षिणपंथी पार्टियों के मन्त्रियों का बोलबाला रहा। इसमें जमाते इस्लामी जैसे धार्मिक कट्टरपंथी फासीवादी दलों के मन्त्री प्रमुख थे। ज़िया ने अपने शासन में जो भी अत्याचार और दमन की कार्रवाइयाँ कीं, खास तौर पर प्रगतिशील तत्वों और जमातों के खिलाफ़, वह दक्षिणपंथियों का भी एजेण्डा था और इसलिए इन कार्रवाइयों को इन दक्षिणपंथियों का पूरा समर्थन प्राप्त था। इन कार्रवाइयों को सही ठहराने के लिए ज़िया ने प्रतिष्ठित वकीलों जैसे ए. के. ब्रोही और शरीफुद्दीन पीरज़ादा का जमकर इस्तेमाल किया जिन्होंने ज़िया की पूरी मदद की। सोचने की बात है कि एक प्रगतिशील कार्यक्रम पर चुने गये जुल्फीकार अली भुट्टो को फाँसी की सज़ा किसी सैनिक ट्रिब्यूनल ने नहीं बल्कि एक नागरिक अदालत ने दी थी। इसी से पता चलता है कि पाकिस्तान में गैर-जनतान्त्रिक प्रवृत्तियों का आधार कितना मज़बूत और जनवादी परम्पराएँ और मूल्य कितने कमज़ोर रहे हैं।

मुशर्रफ़ सभी सैनिक तानाशाहों में सबसे कुशल और समझदार थे। सन् 2000 में उन्होंने बहुदलीय व्यवस्था को रद्द करके म्यूनिसिपल डेमोक्रेसी की स्थापना की। ऐसा अयूब खान और ज़िया ने भी किया था लेकिन मुशर्रफ़ अपने इस काम में विभिन्न दलों तक का समर्थन लेने में कामयाब रहे। 2002 में उन्होंने आम चुनाव कराए और बहुदलीय व्यवस्था को बहाल किया। लेकिन तब तक मुशर्रफ़ पाकिस्तानी राजनीति में अपनी जगह को सुरक्षित कर चुके थे। मुशर्रफ़ शासन पाकिस्तान की बिखरती राजनीति और अर्थनीति की एक ज़रूरत था। पाकिस्तानी पूँजीपति वर्ग भी इस बात को अच्छी तरह समझता था। जनता के रोष और गुस्से का बिना किसी दुविधा के दमन करने का काम कोई नागरिक शासन उतनी सक्षमता के साथ नहीं कर सकता था जितना कि एक सैनिक तानाशाह। बेरोज़गारी, छँटनी और भुखमरी के खिलाफ़ मज़दूर और छात्र जगह-जगह सड़कों पर उतर रहे थे। इस स्थिति को सम्भालने का काम मुशर्रफ़ जैसा सैनिक तानाशाह ही कर सकता था। धार्मिक कट्टरपंथियों को काबू करना भी एक ज़रूरी काम था जो वोटों की राजनीति के आधार पर चलने वाला कोई चुनावी पूँजीवादी दल पाकिस्तान जैसे देश में नहीं कर सकता था। यह काम भी मुशर्रफ़ ही कर सकता था। मुशर्रफ़ ने बहुत कुशलता से पाकिस्तानी पूँजीवाद को संकट के भँवर से अस्थायी तौर पर निकाला और इस काम में पाकिस्तानी पूँजीपति वर्ग ने उनकी पूरी मदद की। पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी समेत सभी पार्टियाँ इस काम में मुशर्रफ़ के साथ रहीं क्योंकि यही पाकिस्तानी पूँजीवाद की ज़रूरत थी।

लेकिन मुशर्रफ़ के शासन ने एक अन्य प्रक्रिया को और मज़बूती प्रदान की, जो दरअसल पाकिस्तान के बनने के समय से ही जारी रही थी। यह प्रक्रिया थी पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था में और राजनीतिक प्रक्रिया में सेना की बढ़ती दखलंदाजी और भूमिका। अर्थव्यवस्था और शासन की तमाम संस्थाओं में सेना

के अफसरों की बढ़ती भूमिका ने सेना को पाकिस्तान का सबसे बड़ा पूँजीपति बना दिया था। इस पूरी प्रक्रिया को समझने के लिए हमें इतिहास में थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा।

ब्रिटिश काल में सेना के अधिकारियों को ज़मीन के विशालकाय खण्ड दिये जाते थे। इनका आकार उनके पद पर आधारित होता था। ये अधिकारी अक्सर किसानों के बीच से ही उठे होते थे लेकिन सेना का अंग बनते ही वे उनसे कहीं ऊपर उठ जाते थे। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी सीमांतों के इलाके में (जो कि आज का पाकिस्तान है) यह परिघटना खास तौर पर प्रभावी थी। सेना के अधिकारियों के अन्त तक ब्रिटिश शासन के वफ़ादार बने रहने का एक कारण यह भी था कि ब्रिटिश शासन ने उन्हें सैन्य ताक़त के अतिरिक्त गाँवों के शासक वर्ग में तब्दील कर दिया था। अधिकांश सेना अधिकारी उस समय ग्रामीण कुलीन वर्ग से आते थे। उनका सामन्ती प्राधिकार ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा नष्ट नहीं किया गया बल्कि उसे सहयोजित करके ब्रिटिश शासन के हितों के अनुरूप बना दिया गया। भारत के उत्तर-पूर्वी हिस्सों में जहाँ पर स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था लागू की गयी, वहाँ पर भी यह परिघटना दूसरे रूप में घटित हुई; इस पर इतिहासकारों ने काम भी किया है। लेकिन यहाँ पर ज़मीन्दार वर्ग का सैन्य चरित्र कम था। वर्तमान पाकिस्तान वाले हिस्से में रैयतवाड़ी या महालवाड़ी भूमि व्यवस्था लागू हुई जिसमें ज़मीन का मालिक किसानों को या फिर ग्राम समुदाय को बनाया गया। लेकिन वहाँ भी सैनिक अधिकारियों को विशाल भूखण्ड सौंपे गये और उन्हें ग्रामीण शासक वर्ग का रूप प्रदान किया गया। साथ ही उन्हें सैन्य शक्ति भी सौंपी गयी। यही वह सैन्य वर्ग है जिसका इतिहास आज पाकिस्तान में यहाँ तक पहुँचा है। सामन्ती व्यवस्था में भी वे मौजूद थे और उनका एक विशिष्ट रूप था और पूँजीवाद के प्रादुर्भाव के बाद पूँजीवाद ने भी उन्हें अपनाया और अपने हितों के अनुरूप एक नया रूप दिया। इस सैन्य भूस्वामी वर्ग को धार्मिक रंग में भी रंगा गया और उनका उपयोग किसानों के दमन और उनके विद्रोहों को कुचलने में जमकर किया गया।

पाकिस्तान के निर्माण के बाद भी सैनिक बलों का ढाँचा उसी रूप में बना रहा जिस रूप में ब्रिटिश काल में रहा था। 1958 तक पाकिस्तानी सेना के अधिकारियों को भूखण्ड दान देने की प्रथा जारी रही। अयूब खान द्वारा 1958 में सैन्य तख्तापलट के बाद और पाकिस्तान पूँजीवाद के तुलनात्मक रूप से उन्नत मंज़िल में प्रवेश कर जाने के बाद इस प्रथा के साथ एक नयी प्रथा भी जुड़ गयी। अयूब खान ने सेना के अधिकारियों को उद्योग, अर्थव्यवस्था और वित्तीय व्यवस्था की महत्वपूर्ण संस्थाओं में पद सौंपने शुरू किये। सेना के अधिकारियों ने अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में अपने पाँव जमा लिये। तमाम सरकारी औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रमुख सेना के अधिकारी बन गये। उन्होंने शेयर और स्टॉक खरीदना शुरू किया और अपनी वित्तीय ताक़त को पाकिस्तान के किसी भी पूँजीपति वर्ग से कहीं ज़्यादा बढ़ा लिया। सेना से सेवा निवृत्त होकर ये अधिकारी तमाम आर्थिक प्रतिष्ठानों के कर्ता-धर्ता बनने लगे। नतीजतन, पाकिस्तान के सैन्य अधिकारियों

के वर्ग का एक पूँजीपति वर्ग के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। उनके हाथों में ज़बर्दस्त आर्थिक शक्ति इकट्ठा हो गयी। लेकिन अयूब खान के काल में यह प्रक्रिया फिर भी सीमित ही रही। अभी सेना में अनुशासन और अन्धराष्ट्रवादी लहर के कारण मौजूद नियम-कानूनों का पालन तमाम स्तरों पर कायम रहा। ब्रिटिश काल में सेना के भीतर मौजूद आदेश की शृंखला (चेन ऑफ कमाण्ड) बरकरार थी। सेना के भीतर का उच्चानीचक्रम बना हुआ था। लेकिन बुर्जुआ जनवाद के तहत मौजूद बुर्जुआ सेना की ये परम्पराएँ पाकिस्तान पर अमेरिका के प्रभाव के बढ़ने और अमेरिका की शह पर पाकिस्तान के इस्लामीकरण के बाद कमजोर पड़ने लगीं। पहले सेना छावनी के क्षेत्र को सेना के अर्थव्यवस्था में दखल से दूर ही रखा जाता था। छावनी के क्षेत्र शहर के सबसे अच्छे हिस्सों में बने थे जहाँ तक हर प्रकार के परिवहन की पहुँच, जल व्यवस्था, पर्यावरणीय व्यवस्था और आम व्यवस्था सबसे बढ़िया थी। जब सेना के अधिकारियों का आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप बढ़ा तो उन्होंने छावनी के क्षेत्रों को भी इसका एक केन्द्र बना दिया। छावनी के क्षेत्रों में रियल स्टेट व्यवसाय पनपने लगा और इसके बूते पर सैन्य अधिकारियों ने अरबों-खरबों में कमाई की। इसके कारण एक पूँजीवादी सेना में भी जितना अनुशासन और व्यवस्था होती है वह भी ढहने लगी। इसके कारण पाकिस्तानी सेना की लड़ने की क्षमता में भी भारी कमी आई। 1965 और 1971 में भारत के साथ युद्ध में आसान पराजय का एक कारण यह भी था। इन पराजयों के बाद सेना के निचले हिस्सों में कई विद्रोह हुए। सेना के अधिकारियों के प्रति सेना में गुस्सा व्याप्त था। यही कारण था कि भुट्टो ने अपने चुने जाने के बाद आराम से सेना के 13 प्रमुख जनरलों को बर्खास्त कर दिया। लेकिन इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। नये जनरलों ने उन्हीं प्रथाओं को जारी रखा जिन प्रथाओं को उनके पूर्वजों ने शुरू किया था। और भुट्टो की सरकार इसको रोक सकने में दो कारणों से अक्षम थी। एक तो यह कि सेना की दखलंदाजी अब अर्थव्यवस्था में गहरे तक पाँव जमा चुकी थी और यह सम्भव नहीं था कि आनन-फानन में उसे खत्म कर दिया जाय। दूसरा कारण यह था कि कोई भी सरकार इतनी ताकत नहीं रखती थी कि सेना के इन अधिकारों को खत्म करके उससे बैर मोल ले। पाकिस्तान का इतिहास ही सेना की शक्ति के बारे में सभी नागरिक तानाशाहों के कान में हमेशा आतंक मंत्र फूँकता रहता है।

यद्यपि अयूब खान के शासन में सेना के चरित्र और उसकी भूमिका में उतने बदलाव नहीं आ पाए थे। अभी सेना के चरित्र को और परिवर्तित होना था। और यह काम होना था ज़िया उल हक़ की सैनिक तानाशाही के अन्तर्गत। ज़िया का शासनकाल वह समय था जब अमेरिकी साम्राज्यवाद ने इस्लामी कट्टरपंथ का पूरे एशिया में जमकर समर्थन किया। इसका कारण था एशिया में समाजवाद के बढ़ते खतरे पर काबू पाना और अतिशक्तिशाली सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद पर लगाम लगाना। अमेरिका ने पाकिस्तान की सेना में दो परिवर्तन लाए। एक परिवर्तन था उसका ज़बर्दस्त इस्लामीकरण और दूसरा परिवर्तन

था पाकिस्तानी सेना का अमेरिकी तर्ज़ पर आधुनिकीकरण। इस इस्लामीकरण के अपने अजीबो-ग़रीब विरोधाभास थे। मिसाल के तौर पर, यह इस्लामीकरण ज़ियनवादी इज़रायली मोसाद एजेंसी की मदद से भी किया गया। इस पूरे घटनाक्रम ने पाकिस्तानी फौज के विचारधारात्मक आधार में कई आधारभूत परिवर्तन किये।

इस पूरी मदद के बदले में अमेरिका ने अपनी मध्य-पूर्व नीति के कार्यान्वयन का मुख्य वाहक पाकिस्तानी सेना और पाकिस्तानी गुप्तचर एजेंसी आई.एस.आई. को बनाया। खास तौर पर अफगानिस्तान में सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद से प्रतिस्पर्द्धा और युद्ध में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने पाकिस्तानी सेना और इस्लामी कट्टरपंथी ताकतों का जमकर इस्तेमाल किया। अफगानिस्तान में जब वामपंथी सरकार थी उसी समय से पाकिस्तानी सेना को अमेरिका ने उसके खिलाफ़ एक गुप्त ऑपरेशन में शामिल किया। इसे जिहाद का नाम दिया गया। इसमें अफगानिस्तानी सरकार और वामपंथियों के खिलाफ़ बर्बरतम अपराधों को अंजाम दिया गया। करोड़ों डॉलर सहायता में पाकिस्तान को दिये गये। इसके अतिरिक्त, सऊदी अरब के प्रतिक्रियावादी शाह, अमेरिकी जियनवादी लॉबी और खुद अमेरिकी ट्रेज़री से अरबों डॉलरों की पाकिस्तानी सेना और पूँजीपति वर्ग पर बरसात कर दी गयी। सबकुछ पहले अफगानिस्तान में वामपंथी उभार को कुचलने और फिर सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद से निपटने के लिए। लेकिन इस खर्च से अमेरिकी कोष पर काफी दबाव पड़ने लगा। नतीजतन, सी.आई.ए. ने एक नया तरीका ईजाद किया। यह तरीका था अफीम की खेती। अफगानिस्तान और पाकिस्तान की 1500 किमी लम्बी सीमा पर पहाड़ी क्षेत्र में अफीम की खेती का काम शुरू हुआ। इस क्षेत्र में किसी भी सरकार का नाममात्र का ही नियंत्रण था और वहाँ कबायली नियंत्रण का बोलबाला था। सी. आई.ए. ने इस अफीम से हेरोइन बनाने के लिए उन्नततम प्रयोगशालाएँ स्थापित कीं। इस पूरे धन्धे में पाकिस्तानी सेना के अधिकारियों को भी शामिल कर लिया गया। समय बीतने के साथ इस पूरे घृणित कार्यक्रम को अंजाम देने के लिए सारा ज़मीनी काम पाकिस्तानी सेना ही करने लगी। इस के व्यापार के सी.आई.ए. के इस कार्यक्रम से पाकिस्तानी सेना के अधिकारियों ने इतना पैसा बनाया जिसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। इस पूरे पैसे के बल पर ही अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अपने अफगान युद्ध का संसाधन जुटाया। ज़िया के शासन काल में भारत के खिलाफ़ युद्धोन्माद को नहीं भड़काया गया और भारत के साथ शान्ति बरकरार रखने पर बल दिया गया। कारण यही था कि उस समय पाकिस्तानी सेना अमेरिका की अफगान योजना को अमल में लाने में जुटी हुई थी। लेकिन पाकिस्तानी सैन्य अधिकारियों का लालच बढ़ता गया और इस पैसे से भी वे असन्तुष्ट हो गये। इसका एक कारण यह भी था कि उन्हें अपने मुनाफ़े को सीमान्त के कबीलों से साझा करना पड़ता था। ये कबीले किसी के काबू में नहीं आते थे और वक्तन-ज़रूरतन अपनी वफ़ादारियाँ बदलते रहते थे।

अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए पाकिस्तान के सैन्य

अधिकारियों ने एक और काम शुरू किया और वह भी अमेरिका से छिपाकर। उन्होंने जिहाद के लिए आए उन्नततम अमेरिकी हथियारों की स्मगलिंग शुरू कर दी। ये हथियार उन्होंने ईरान के तत्कालीन अमेरिका-विरोधी शासन से लेकर जॉर्डन, सीरिया और लेबनान तक के अमेरिका-विरोधी ताकतों को बेचे। इसके बहुत मजेदार परिणाम हुए। अमेरिकी सेना और शासन उस समय चकित रह गये जब 1980 के दशक में अमेरिकी हेलीकॉप्टरों पर ईरानी इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड्स ने अमेरिका द्वारा ही बनाई गई अत्याधुनिक स्टिंगर मिसाइलों से हमला किया। लेकिन तब तक इस भ्रष्टाचार पर काबू पाने के लिए बहुत देर हो चुकी थी।

ड्रग्स और हथियारों के व्यापार के बल पर पाकिस्तानी सैन्य अधिकारियों ने 1970 और 1980 के दशक में खरबों डॉलर कमाए। इससे उनकी आर्थिक ताकत में ज़बरदस्त बढ़ोतरी हुई। इस काले धन के बूते पर इन सैन्य जनरलों ने पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था के उद्योग, वित्त, वाणिज्य और प्रशासनिक सेक्टरों में अपनी पकड़ को और अधिक मज़बूत बना लिया। अब पुराना सैन्य कुलीन वर्ग जो 1958 से पहले के भूदानों के बूते पर खड़ा था, इस नये सैन्य कुलीन वर्ग के सामने बौना दिखलाई देने लगा। पाकिस्तान में एक नया, आधुनिक, अमेरिकीकृत, भ्रष्ट, चालाक और सत्ता का भूखा सैन्य कुलीन वर्ग अस्तित्व में आ चुका था जो पूरी पाकिस्तानी पूँजीवादी राजनीति के चरम स्थान पर बैठा हुआ था। यह राजनीतिक चेतना से सम्पन्न वर्ग था जो जानता था कि वह खुला सैन्य शासन लम्बे समय तक नहीं चला सकता है। उसे नागरिक शासन की ज़रूरत थी। लेकिन नागरिक शासन उसके हितों के अनुरूप ही काम कर सकता था क्योंकि आर्थिक ताकत का आधे से अधिक हिस्सा इस सैन्य कुलीन वर्ग के हाथों में संकेन्द्रित था। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में वे वरिष्ठ साझीदार थे और क्लासिकीय पूँजीपति वर्ग कनिष्ठ साझीदार। इस पूरी परिघटना ने पाकिस्तान में एक **जटिल सैन्य-औद्योगिक तंत्र** को जन्म दिया जो आज भी चल रहा है।

अफगानी जिहाद के अतिरिक्त, पाकिस्तानी सैन्य अधिकारियों ने आणविक तकनीक अवैध रूप से कई देशों को बेचकर भी ज़बरदस्त कमाई की। पाकिस्तानी आणविक कार्यक्रम को कई शक्तियों के सामने खोला गया और उन्हें इसकी जानकारी थी। ईरान और कोरिया में इसमें प्रमुख थे। पाकिस्तानी सैन्य अधिकारियों ने जो काला धन कमाया उसे सुरक्षित रखने के लिए पहले एक अलग बैंक की ही स्थापना की गई जिसका नाम था बैंक ऑफ़ क्रेडिट एंड कॉमर्स इंटरनेशनल। बाद में इस बैंक का कच्चा-चिट्ठा खुलने के बाद उसे खत्म कर दिया गया। लेकिन तब तक सैन्य अधिकारी इस काले धन को अर्थव्यवस्था के अलग-अलग सेक्टरों में लगाकर सफेद धन बना चुके थे, जैसे निर्माण, अवसंरचना, वित्त, रियल स्टेट, मैनुफैक्चरिंग आदि। आज इस काले धन का एक बड़ा केन्द्र दुबई है जहाँ सैन्य अधिकारियों ने इस धन को जमा कर रखा है। यही धन आज तालिबान और अल-कायदा जैसे धार्मिक कट्टरपंथी आतंकवादी और फासीवादी संगठनों का वित्तीय-आर्थिक आधार बने हुए हैं। आज पाकिस्तान के अन्दर एक शासक वर्ग मौजूद है जिसके मुख्य खिलाड़ी हैं सैन्य अधिकारी,

न्यायपालिका, वरिष्ठ नागरिक नौकरशाह, धार्मिक कट्टरपंथी मुल्ला वर्ग, शीर्ष के व्यापारी और पूँजीपति वर्ग। पूरी पाकिस्तानी पूँजीवादी व्यवस्था ने यही विशिष्ट रूप अख्तियार किया है। जाहिर है, ऐसा पूँजीवाद जो बिना किसी शक्तिशाली पूँजीपति वर्ग और उसकी प्रगतिशील प्रवृत्तियों के बिना अस्तित्व में आया है, वह कभी जनवादी नहीं हो सकता। इन तमाम शक्तियों के बीच, जो शासक वर्ग का अंग हैं, आपसी अन्तरविरोध भी है जो बीच-बीच में सामने आते रहते हैं। मिसाल के तौर पर, हाल के वकीलों के आन्दोलन के दौरान भी यही अन्तरविरोध सामने आये थे। लेकिन जनता के बीच विद्रोह और असन्तोष की भावना पैदा होते हैं ये सभी वर्ग अपने अन्तरविरोधों को भुलाकर साथ आ जाते हैं। कई बार ये जनता के आक्रोश का एक-दूसरे के विरुद्ध भी रणनीतिक इस्तेमाल करते हैं, लेकिन एक हद तक ही, यानी जहाँ तक सुरक्षित हो। हाल में, ये अन्तरविरोध बार-बार सिर उठाते रहे हैं। इसका एक कारण पूरे पाकिस्तानी पूँजीवाद का आर्थिक संकट भी है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस संकट का सीधा रिश्ता विश्व पूँजीवाद के आर्थिक संकट से है।

पाकिस्तान की राजनीति और शासन में सेना की भूमिका को समझने के लिए आवश्यक है कि हम अलग-अलग दौरों में पाकिस्तानी पूँजीवाद की चारित्रिक आभिलाक्षणिकताओं को समझें। इसके अतिरिक्त, हमें सेना के भीतर मौजूद वर्ग अन्तरविरोधों को समझने की भी आवश्यकता है। पाकिस्तानी पूँजीवाद और समाज के विकास के अलग-अलग दौरों में पाकिस्तानी सेना का चरित्र और उसका राजनीति में दखल बदलता रहा है। हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं कि सामान्य परिस्थितियों में एक पूँजीवादी देश में सेना का काम शासक वर्ग की नीतियों और निर्देशों को सुगमता के साथ लागू करवाना होता है और हर सम्भव प्रतिरोध को कुचलना होता है। इसका काम शासन के खिलाफ़ सिर उठाने वाले मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के संघर्ष को दबाना और पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग की रक्षा करना होता है। शासक वर्ग अपने प्रभुत्व को सेना के रूप में तो कायम रखता ही है लेकिन यह उसका सबसे नग्न और अन्तिम मौके पर उपयोग में लाया जाने वाला रूप है। इस मौके के पहले सामान्य स्थितियों में शासक वर्ग अपने विचार और संस्कृति, अपने मनोवैज्ञानिक प्रभुत्व को परम्परा, मीडिया, स्कूल और उनके पाठ्यक्रम, अपने दर्शन और बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा लागू करता है। जब प्रभुत्व के ये रूप संतुष्ट हो जाते हैं तब नग्न बल का, यानी सेना, पुलिस और सशस्त्र बलों का उपयोग किया जाता है। इतिहास बताता है कि सामान्य स्थितियाँ लगातार नहीं बनी रहती हैं और ये तरीके हमेशा ही कुछ समय बाद संतुष्ट हो जाते हैं और नग्न बल के इस्तेमाल की ज़रूरत पैदा हो जाती है। नग्न बल के उपयोग का नतीजा कई बार यह होता है कि जनता का प्रतिरोध और प्रबल हो उठता है और क्रान्तिकारी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। इस सभी चीज़ों का सेना पर भी प्रभाव पड़ता है। ऐसे में अक्सर सेना के भी निचले हिस्से जनता के साथ शामिल हो जाते हैं।

**(पेज 24 पर जारी)**

## दिल्ली मेट्रो रेल के कामगारों का अपनी कानूनी माँगों के लिए संघर्ष

● अजय

हम सभी मेट्रो रेल को दिल्ली की शान समझते हैं। मीडिया से लेकर सरकार तक मेट्रो को दिल्ली की शान बताने का कोई मौका नहीं चूकते। मुख्यमंत्री शीला दीक्षित से लेकर प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह तक मेट्रो के कसीदे पढ़ते हुए, इसके कार्यकुशल प्रबंधन को उदाहरण के रूप में पेश करते हैं, तो दूसरी तरफ जगमगाती, चमकदार, उन्नत तकानोलाजी से लैस मेट्रो को देखकर कोई भी दिल्लीवासी फूला नहीं समाता। लेकिन बहुत कम ही लोग जानते हैं कि इस उन्नत, आरामदेह और विश्व-स्तरीय परिवहन सेवा के निर्माण से लेकर उसे चलाने और जगमगाहट को कायम रखने वाले मजदूरों के जीवन में कैसा अन्धकार व्याप्त है। चाहे वे जान-जोखिम में डालकर निर्माण कार्य में दिनों-रात खटने वाले मजदूर हो, या स्टेशनों पर काम करने वाले गार्ड या सफाईकर्मी, किसी को भी उनका जायज़ हक़ और सुविधाएँ नहीं मिलती।

दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन शुरू से ही तीन तरह के कार्य ठेका कम्पनियों के जरिए से कराता रहा है। इसमें सफाई, टिकटिंग, और यात्रियों की सहायता के लिए लगाए सहायक कर्मचारी शामिल हैं, जिनकी संख्या 2800 के आस-पास है। ये ठेका मजदूर 69 स्टेशनों और 3 डिपो में ए टू जेड, बेदी एण्ड बेदी, केशव सिक्कोरिटी, आल सर्विसेज, ग्रुप फोर सहित नौ ठेका कम्पनियों के माध्यम से कार्यरत हैं। हर तरह की मेंटेनेंस सुविधाओं की सेवा उपलब्ध कराने का दावा करने वाली ये ठेका कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को ही कोई सुविधा नहीं देती और सारे श्रम कानूनों को ताक पर रखकर कर्मचारियों का शोषण कर रही हैं। यँ तो पूरा दिल्ली मेट्रो मजदूरों के खून-पसीने और हड्डियों की नींव पर खड़ा किया गया है लेकिन इसके बदले में मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी, साप्ताहिक छुट्टी, पी.एफ. और ई.एस.आई जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रखा जाता है और श्रम कानूनों की खुले-आम धज्जियाँ उड़ाते हुए 16 घण्टे ओवरटाइम काम लिया जाता है। हालाँकि सभी मेट्रो स्टेशनों के अन्दर मेट्रो प्रशासन ने एक बोर्ड जरूर लटका दिया है कि “यहाँ सभी श्रम कानून लागू किये जाते हैं” लेकिन सच्चाई यह है कि मेट्रो में काम करने वाले सफाई मजदूर हो या फिर निर्माण मजदूर सभी से जानवरों की तरह हाड़तोड़ काम लिया जाता है। और जब मजदूर अपने कानूनी हक माँगते हैं या स्टेशन मैनेजर से शिकायत करते हैं तो उन्हें तरह-तरह से डराने-धमकाने की कोशिशें की जाती हैं। मेट्रो प्रशासन और ठेकेदार चाहते हैं कि मजदूर भेड़-बकरियों की तरह सिर झुकाकर काम करते रहें, लेकिन हक-अधिकार न माँगें।

वैसे सरकार के न्यूनतम मजदूरी कानून, 1948 के अनुसार प्रत्येक सफाईकर्मी को 186 रु. प्रति दिन के हिसाब से वेतन मिलना चाहिए। लेकिन मेट्रो सफाईकर्मियों को 90 रु. से 110 रु. प्रति दिन के हिसाब से मजदूरी मिलती है। असल में तो सारे

कानूनों को कायदे से लागू करने की जिम्मेदारी मेट्रो प्रशासन की है। चूँकि, मेट्रो प्रशासन ही सभी ठेका मजदूरों का प्रधान नियोक्ता है, इसलिए उसकी यह जिम्मेदारी बनती है कि वे सफाईकर्मियों को उनका हक़ दिलवाये। लेकिन मेट्रो प्रशासन सब कुछ जानते हुए भी अनजान बने रहने का नाटक करता है। और सारा दोष ठेका कम्पनियों के मत्थे मढ़कर साफ बच निकलना चाहता है। मेट्रो प्रशासन अपने कार्यरत मजदूरों के मामले में कितना संवेदनशील है इसे हाल के उस वाक्ये से समझा जा सकता है जिसमें एक सुरक्षा गार्ड का हाथ ट्रेन के दरवाज़े में फंस गया और लटकते हुए अगले स्टेशन तक चला गया। इस पूरे मामले में मेट्रो प्रशासन मामले की लीपापोती करने में लगा रहा और घटना की जिम्मेदारी खुद उस गार्ड और यात्रियों पर डालने की कोशिश करता रहा। और हर्जाना कम से कम देना पड़े इसके लिए मेट्रो प्रशासन ने डाकटों पर दबाव तक डाला कि वे चोट को मामूली बतायें।

मेट्रो मजदूरों के ये हालात बताते हैं कि दिल्ली मेट्रो के चमचमाते ग्रेनाइट के फर्शों और शीशे की दीवारों की चमक जिन मजदूरों की बदौलत कायम है उनकी जिन्दगी कितने गहरे अंधेरे में डूबी हुई है। लेकिन जहाँ शोषण और अन्याय है वहाँ प्रतिरोध होना लाजिमी है। दिल्ली मेट्रो के भीतर सभी श्रम कानूनों की नग्न अवहेलना के खिलाफ ‘मेट्रो कामगार संघर्ष समिति’ ने एक संघर्ष की शुरुआत की है और मजदूरों को एकजुट और संगठित करने का काम शुरू किया है। संघर्ष समिति ने ठेका कम्पनियों की मनमानी के खिलाफ एक हस्ताक्षर अभियान शुरू किया, जिसमें अभियान में लगभग 60 सफाईकर्मी शामिल रहे हैं। और गत 23 जनवरी को हस्ताक्षर किया ज्ञापन संघर्ष समिति ने डी.एम.आर.सी. के प्रबंधक निर्देशक (डव) श्रीधरन, अध्यक्ष रामचंद्रन और क्षेत्रीय श्रमायुक्त, मुख्यमंत्री शीला दीक्षित और केन्द्रीय श्रम मन्त्री आस्कर फर्नांडीज को सौंपा।

संघर्ष समिति के जुझारू संघर्ष के बाद मेट्रो प्रशासन मजदूरों से डर गया है। मजदूरों की सोई हुई ताकत के जाग उठने के ख्याल से मेट्रो प्रबंधन तथा ठेकेदारों को बुरे सपने आने लगे हैं। उसे डर है कि आजादी और हकों की यह लड़ाई मेट्रो के अन्य मजदूरों तक न पहुँच जाये। इसलिए मजदूरों की एकजुट आवाज को भाँपते हुए, मेट्रो प्रशासन उनकी जुबान बन्द करने पर आमादा हो गया है। गत 4 फरवरी को मेट्रो प्रशासन ने अपने कर्मचारियों के नाम ‘कोड ऑफ वैल्यू एण्ड एथिक्स’ नाम से सर्कुलर जारी करके मजदूरों से उनके सभी जनतांत्रिक व कानूनी अधिकार छीन लेने की कोशिश कर रहा है। इस सर्कुलर में मजदूरों व कर्मचारियों से स्पष्ट कहा गया है कि वे किसी भी अन्य सरकारी विभाग में मेट्रो प्रशासन की शिकायत नहीं कर सकते हैं। वे मेट्रो में चल रहे किसी भी अन्याय या धाँधली के खिलाफ मीडिया में नहीं जा

सकते हैं। न्यायालय में भी जाने पर मनाही है। और अगर न्यायालय में जाना हो तो पहले डी.एम.आर.सी. के सतर्कता विभाग में शिकायत करनी होगी। यानी, हर मामले में गवाह भी मेट्रो प्रशासन, वकील भी मेट्रो प्रशासन और न्यायधीश भी मेट्रो प्रशासन! ऐसे में मजदूरों के साथ कौन-सा न्याय होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

मेट्रो प्रशासन की तानाशाही के जवाब में संघर्ष समिति ने पर्चा वितरित किया और इस फासीवादी सर्कुलर के खिलाफ मजदूरों का आह्वान करते हुए कहा कि हमें अपने अधिकारों के लिए आखिर दम तक लड़ना होगा और मिलकर अपनी आवाज़ बुलन्द करनी होगी। क्योंकि मजदूरों के पास संघर्ष के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

मेट्रो प्रशासन के इस मजदूर विरोधी रवैये के खिलाफ मेट्रो कामगार संघर्ष समिति 25 मार्च को आन्दोलन को आगे बढ़ते हुए मेट्रो भवन पर चेतावनी प्रदर्शन किया। चार घण्टे चले प्रदर्शन को सारे मीडिया ने दिखलाया और नागरिकों ने इसका जोरदार समर्थन किया। प्रदर्शन के दौरान कर्मचारियों के एक प्रतिनिधिमण्डल ने जब अपनी माँगों से सम्बन्धित ज्ञापन देने के लिए मेट्रो परिसर के भीतर जाने की कोशिश की तो उन्हें गेट पर ही रोक दिया गया और कहा गया कि मेट्रो प्रशासन उनका ज्ञापन नहीं लेगा। इस पर सभी कर्मचारी गेट को जाम कर धरने पर बैठ गये और मेट्रो के

खिलाफ नारेबाजी शुरू कर दी। स्थिति को बिगड़ता देख तत्काल पुलिस बुला ली गयी। पुलिस ने भी मामले में कुछ भी कर पाने में अक्षमता जता दी। अंततः, पुलिस के हस्तक्षेप से मेट्रो प्रशासन ने ठेका कम्पनी एराइस के प्रतिनिधि विजय को भेजकर कर्मचारियों का ज्ञापन स्वीकार किया। संघर्ष समिति ने माँग की है कि न्यूनतम वेतन 186 रुपये दिया जाये, साप्ताहिक अवकाश, ई.एस.आई., पी. एफ. की सुविधा दी जाय तथा ठेका प्रथा बन्द करके कर्मचारियों को स्थायी किया जाये। संघर्ष समिति के अजय स्वामी ने बताया कि मेट्रो प्रशासन ठेका मजदूरों की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए सारा जिम्मा ठेका कम्पनियों पर डाल रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि मेट्रो प्रशासन ने मेट्रो कामगार संघर्ष समिति के आर.टी.आई. आवेदन के जवाब में लिखित रूप में यह स्वीकार किया है कि डी. एम.आर.सी. ही मेट्रो में काम करने वाले सभी ठेका मजदूरों की प्रमुख नियोक्ता है और मजदूरों के अधिकार दिलाने की जिम्मेदारी डी.एम.आर.सी. की ही है। उन्होंने कहा यदि डी.एम.आर.सी. दस दिनों के भीतर हमारी माँगों की सुनवाई नहीं करती तो हम मेट्रो भवन पर धरना देंगे और उसके सभी गेटों को जाम कर देंगे। इस छोटे-से एकजुट प्रदर्शन ने मेट्रो की तानाशाही को चुनौती दे डाली और उसे हिलाकर रख दिया। इस प्रदर्शन की विजय दिखलाती है कि अगर सभी सफाई कर्मचारी निडर होकर एकजुट हो जायें तो वे

**(पेज 27 पर जारी)**

## क्यों है ऐसा पाकिस्तान?

(पेज 22 से जारी)

पाकिस्तानी सेना में जनता के संघर्षों के प्रभाव के कई उदाहरण हैं। 1968-69 के दौरान पाकिस्तान में छात्रों, स्त्रियों, किसानों और मजदूरों के कई आन्दोलन जारी थे। सेना के भीतर भी इन आन्दोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा था। उस समय इन आन्दोलनों का निशाना फील्ड मार्शल अयूब खान था। उस समय निचले स्तरों के अतिरिक्त, सेना के उच्च स्तरों पर भी इन आन्दोलनों का प्रभाव पड़ने लगा था। सेना ने मार्शल लॉ लागू करने से इंकार कर दिया था। उसका कहना था कि अगर अयूब खान ही राष्ट्रपति बने रहते हैं तो मार्शल लॉ नहीं लगाया जाएगा। 1970 के चुनावों में सेना के बैरकों से सबसे अधिक वोट पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी के उम्मीदवारों को मिले जो एक रैडिकल घोषणापत्र के साथ चुनाव लड़ रही थी। पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी की विजय के बाद जुल्फीकार अली भुट्टो की सरकार बनी जिसने अपने कार्यक्रम पर अमल की बजाय पूँजीपति वर्ग की सेवा को दूसरे रूप में जारी रखा। सुधारवादी कार्यक्रम की इस असफलता के बाद सेना में भी निराशा फैली। 1960 से लेकर 1970 के दशक पाकिस्तानी समाज में जनता के आन्दोलनों के दबदबे के दशक थे। 1970 के दशक की समाप्ति के बाद पीपीपी की असफलता और पाकिस्तान में वामपंथी धारा के तेज़ी से हास और विश्व स्तर पर मजदूर वर्ग के आन्दोलनों के पीछे हटने से पूरे पाकिस्तानी समाज में भी प्रतिक्रिया के हावी होने का दौर शुरू हुआ। पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट विश्व पैमाने पर

गहराने लगा था। किसी प्रगतिशील नेतृत्व की गैर-मौजूदगी में धार्मिक कट्टरपंथ और प्रतिक्रिया ने अपना प्रभाव जमाना शुरू कर दिया। 1980 के दशक की शुरुआत तक पाकिस्तान पर प्रतिक्रिया की धारा एक बार फिर हावी हो चुकी थी। जिया उल हक का पूरा दौर इसी प्रतिक्रिया की धारा के हावी होने का प्रतीक था।

प्रतिक्रिया का यह दौर विभिन्न उतार-चढ़ावों से होकर पाकिस्तान में आज भी जारी है। आज फिर पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी की सरकार पाकिस्तान में काबिज है और सेना का पाकिस्तानी राजनीति और अर्थव्यवस्था में दखल उसी तरह बना हुआ है। पाकिस्तानी सेना के भीतर वर्ग अन्तरविरोधों का गहराना जारी और समाज के भीतर भी वर्ग अन्तरविरोध तेज़ी से गहरा रहे हैं। साथ ही पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था भी एक भँवर में फँसी हुई है। ये स्थिति मजदूर वर्ग और आम मेहनतकश वर्गों में एक भयंकर असन्तोष को जन्म दे रही है जो आने वाले समय में पाकिस्तान को भयंकर उथल-पुथल की तरफ ले जा सकता है। लेकिन वहाँ पर किसी क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी शक्ति के न होने की समस्या भारत से भी ज़्यादा चिन्ताजनक रूप में मौजूद है। ऐसी किसी क्रान्तिकारी शक्ति की गैर-मौजूदगी में तमाम जनविद्रोह भी इतिहास को आगे ले जाने का काम नहीं कर सकते। देखना यही है कि इस पूरी संकटपूर्ण स्थिति को सम्भाल सकने वाली कोई क्रान्तिकारी शक्ति पाकिस्तान में जन्म ले पाती है या नहीं।

# et n j k s } k j k N k = k s d k s d [ k y k [ k r

6 दिसम्बर को विद्यालय के एक छात्र की पुलिस की गोली से मृत्यु पर पूरे ग्रीस देश में दंगे भड़क उठे। दंगों ने बगावत का रूप ले लिया। विद्यालयों-विश्वविद्यालयों पर छात्रों ने कब्जा कर लिया। छात्रों-मजदूरों ने सरकारी इमारतों, रेडियो व टेलिविजन केन्द्रों पार्टियों-यूनियनों के कार्यालयों पर कब्जा कर लिया। हजारों की संख्या में लोग जगह-जगह पुलिस से भिड़े। क्रिसमस और नव वर्ष के लिए सजे व्यावसायिक केन्द्रों का हाल युद्ध में ध्वस्त क्षेत्रों जैसा हो गया। थानों को आग लगाई गई और अमीरजादों से व्यापक स्तर पर सामान छीने गये। जनतंत्र में मजदूरों-मेहनतकशों के खिलाफ व्यापक हिंसा में सहभागी यूनियनों, राजनीतिक पार्टियों, पादरियों, पत्रकारों और व्यावसायियों ने जनतंत्र कानून-व्यवस्था-शांति-अहिंसा की दुहाइयों के संग दमन का ताण्डव किया।

16 दिसम्बर '08 के "एथेन्स में मजदूरों का छात्रों को एक खुला खत" देखिये।

- सम्पादक

आयु के भेद और आम दुराव तुमसे गालियों में चर्चाएं करना हमारे लिए कठिन बना रहे हैं इसलिए हम यह पत्र जारी कर रहे हैं।

हम में से अधिकतर अभी गंजे अथवा पेटू नहीं हुए हैं। हम 1990-91 के आन्दोलन का अंश हैं। तुम लोगों ने उसके बारे में सुना होगा। तब हमने अपने विद्यालयों पर 30-35 दिन कब्जा किया था। उस दौरान सरकार ने एक अध्यापक को मार डाला था क्योंकि अध्यापक ने हमारी चौकीदारी करने की सौंपी गई भूमिका त्याग दी थी और सीमा पार कर हमारे संघर्ष में आन मिला था। अध्यापक की मृत्यु पर हममें जो किसी से मतलब नहीं रखते वो भी सड़कों पर उतर आये थे और दंगा किया था। तब हालांकि हम ने "थानों को आग लगाओ..." गाया पर ऐसा करने का सोचा तक नहीं जबकि आज आप लोग इतनी सहजता से थानों को फूँक रहे हैं।

तो, आप हम से आगे चले गये हैं, जैसा कि इतिहास में सदा होता है। बेशक हालात में फर्क है। नब्बे के दशक के दौरान निजी सफलता की सम्भावना को परोसा गया और हम में से कुछ ने उसे निगल लिया। अब लोग इस पूरी कथा पर विश्वास नहीं कर सकते। तुम्हारे ज्येष्ठ बन्धुओं ने 2006-07 के छात्र आन्दोलन के दौरान हमें यह दिखाया और तुम तो सुनाने वालों के मुँह पर उनकी परी कथाओं को थूक रहे हो।

यहाँ तक बढ़िया है। अब अच्छे और कठिन मामले आरम्भ होते हैं।

अपने संघर्षों और पराजयों से हम ने जो सीखा है वह तुम्हें बतायेंगे। पराजयों की बात इसलिए कि जब तक संसार हमारा नहीं होगा तब तक हम सदा पराजित ही होंगे। हम ने जो सीखा है उसे तुम जैसे चाहो प्रयोग कर सकते हो।

अकेले मत रहो। हमें बुलाओ, अधिक से अधिक लोगों को बुलाओ। हमें नहीं पता कि यह तुम कैसे कर सकते हो, तुम राह ढूँढ लोगे। तुम ने पहले ही अपने विद्यालयों पर कब्जा कर लिया है और तुमने हमें बताया है कि इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि तुम्हें तुम्हारे स्कूल अच्छे नहीं लगते। बढ़िया है, चूँकि तुमने उन पर कब्जे कर ही लिये हैं तो उनकी भूमिका बदलो। अपने कब्जों को अन्य लोगों के साथ साझा करो। अपने विद्यालयों को हमारे नये सम्बन्धों के निवास की पहली इमारतें बना दो। उनका सबसे शक्तिशाली हथियार हमें बाँटना है। जो कि उनके थानों पर हमले करने से तुम नहीं डरते क्योंकि तुम एकजुट होते हो, वैसे ही हम सब के जीवन को मिल कर बदलने के लिए हमें बुलाने से भय मत खाओ।

किसी भी राजनीतिक संगठन की मत सुनो। जिसकी तुम्हें आवश्यकता है वह करो। लोगों पर भरोसा करो, अमूर्त-हवाई योजनाओं और विचारों पर विश्वास मत करो। लोगों के साथ सीधे सम्बन्धों पर भरोसा करो। अपने मित्रों पर विश्वास करो और अपने संघर्ष में शामिल अधिक से अधिक लोगों को अपने लोग बनाओ। उनकी मत सुनो जो कहते हैं कि तुम्हारे संघर्ष में राजनीतिक सामग्री-सार नहीं जिसे कि प्राप्त करना ही चाहिए। तुम्हारा संघर्ष ही सार है। तुम्हारे पास तुम्हारा संघर्ष ही है और इसे बढ़ाना तुम्हारे हाथों में है। यह तुम्हारा संघर्ष ही है जो कि तुम्हारे जीवन को बदल सकता है, यानी तुम्हें और साथियों के साथ तुम्हारे वास्तविक रिश्तों को बदल सकता है।

जब नई बातों से वास्ता पड़े तब बढ़ने से डरो मत। हममें से प्रत्येक के मस्तिष्क में चीजें डाली-छापी-बोई जाती है। आयु के साथ यह बढ़ती जाती है पर हैं तुम में भी हालाँकि तुम युवा हो। इस तथ्य के महत्व को मत भूलो।

1991 में नये विश्व की महक से हमारा वास्ता पड़ा था और, हम पर विश्वास करो वह सुगन्ध हमें कठिन लगी थी। हम ने सीख रखा था कि सीमाएं सदा ही होनी चाहिए। माल के ध्वंस से भयभीत मत हो। लोगों द्वारा भण्डारों को लूटने से डरो मत यह सब हम बनाते हैं, यह हमारे हैं। हमारी ही तरह तुम्हारा भी पालन रोज सुबह उठ कर चीजें बनाने के लिए किया जा रहा है, चीजें जो कि फिर तुम्हारी नहीं होगी। आओ मिल कर हम उन चीजों को वापस लें और साझा करें। वैसे ही जैसे कि हम अपने मित्रों और अपने प्यार को आपस में साझा करते हैं।

इस पत्र को जल्दी में लिखने के लिए हम क्षमा चाहते हैं परन्तु हम काम के दौरान साहब से छिपा कर लिख रहे हैं। हम काम के बन्दी है जैसे कि तुम स्कूल में कैदी हो।

अब साहब से हम झूठ बोलेंगे और काम से छुट्टी करेंगे। अपने हाथों में पत्थर ले कर तुम से मिलने सिन्ट्राम्मा चौक पहुँचेंगे।

(‘मजदूर समाचार’ से साभार)

## स्माइल पिंकी : मुस्कान छीनने और देने का सच परदा व परदे के पीछे का यथार्थ

● प्रेमप्रकाश

स्लमडाग मिलियनेयर व स्माइल पिंकी के जरिये प्रतिभाओं का डंका दुनिया भर में बज चुका है। ऑस्कर अवार्ड वितरण समारोह की रात वास्तव में शहदभरी रात साबित हुई, जिसने भारतीय मीडिया एवं भारतीयों के दिलों दिमाग में मिठास घोल दी है।

जी हाँ, बात उस लघु वृत्तचित्र 'स्माइल पिंकी' की है। अमेरिकी निर्देशक मेगन मायकान द्वारा निर्देशित यह डॉक्यूमेंट्री भारतीय चैनलों के प्रतिस्पर्धा और चर्चा का विषय बनी। 'स्माइल पिंकी' उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिले के गाँव रामपुर डबाही की 9 वर्ष की एक लड़की की कहानी है जिसका ऊपर का होठ बचपन से ही कटा हुआ था। लोग उसे 'होठकटी' कहकर चिढ़ाते थे उसके गरीब माता-पिता राजेन्द्र सोनकर और शिमला देवी के लिए उसका इलाज कराना सम्भव नहीं था। पिंकी का बचपन उसके कटे होठों की वजह से नारकीय हो गया था समाज में हर कहीं उसे तिरस्कार और उपेक्षा का सामना करना पड़ रहा था और इसी बीच पिंकी के परिवार की मुलाकात एक एन.जी.ओ. 'स्माइल ट्रेन' के कार्यकर्ता से हुई और एक आपरेशन द्वारा पिंकी के होठ को ठीक कर दिया जाता है।

इस वृत्तचित्र के ऑस्कर पुरस्कार प्राप्त होने को ऐसे प्रचारित किया जा रहा है मानो इसकी सफलता से दुनियाभर के तमाम गरीब बच्चे, गरीबी के कारण पैदा हुई तमाम बीमारियों से छुटकारा पा गए हों अथवा इससे छुटकारा पाने का एन.जी.ओ.-पंथी तरीका एवं चिकित्सकीय सुविधाएँ ही सही और एकमात्र विकल्प है। ऑस्कर में 'स्माइल पिंकी' की सफलता के बाद रामपुर डबाही गाँव में हलचलें बढ़ गयी गाँव व गाँव के गरीब दम्पति रातों रात ग्लोबल बन गये और ऐसा लगने लगा कि सम्पूर्ण विश्व पिंकी जैसे बच्चों की हँसी और खुशी के लिए व्याकुल हो गया है और दोनों हाथ फैलाकर उसे गले लगाना चाहता है।

"निर्देशक मेगन मायकान का कहना है कि सामाजिक विषयों पर डॉक्यूमेंट्री बनाने वाली फिल्मकार होने के कारण उन्हें ऐसी फिल्म बनाने का अवसर कम ही मिलता है जिसका अंत सुखद हो।"

कला के मापदण्डों और मानकों की कसौटियों के कुछ बिन्दुओं पर स्माइल पिंकी एक अच्छा लघुवृत्तचित्र हो सकता है; बालमन पिंकी की संवेदनाओं के बारीक पहलुओं को उजागर करने, उसकी तकलीफों और खुशी को उजागर करने का कला का यह एक सफल प्रयास हो सकता है लेकिन कला की अपनी सामाजिक राजनीतिक और दार्शनिक पक्षधरता होती है; समस्या के मूल कारणों पर पर्दा डालने और विश्व बाजारवादी पूँजीवादी व्यवस्था के पोषण के कारणों से व तीसरी दुनिया के बाजार के कारण स्माइल पिंकी को यह पुरस्कार दिया गया है।

पिंकी जैसी तमाम बच्चों की शारीरिक विकृति के बारे में जिस 'स्माइल पिंकी' वृत्तचित्र को जागरूकता फैलाने के लिए सर्वाधिक कारगर माना जा रहा है उसकी जागरूकता की सीमाएँ स्पष्ट हैं। लोग जानेंगे कि उनके बच्चे की शारीरिक विकृति का इलाज हो सकता है, लोग जानेंगे कि किसी दानवीर, किसी मालिक, किसी एन.जी.ओ. की उन पर कृपा दृष्टि हो और हजार ठोकरों के बाद उन्हें मिलेगी एक मुस्कान भीख में।

पिंकी की मुस्कान क्यों गायब हो गयी? क्या कारण है कि इस तरह की शारीरिक विकृति सम्बन्धी बीमारियाँ गरीबों के बच्चों को ही अधिकाधिक होती हैं? सही दिशा में प्रयास तो यह होगा कि लोगों के अन्दर इस बात के लिए जागरूकता फैलाई जाए कि इस तरह की बीमारियों के पैदा होने का मूलस्रोत क्या है उसे खत्म कैसे किया जाये।

देश में हर साल करीब 35 हजार ऐसे बच्चे जन्म लेते हैं जिनके होठ और तालू कटे-फटे होते हैं जिनमें से अधिकांश बच्चे गरीबी और कुपोषण का शिकार होते हैं। एक बार के लिए यह मान भी लिया जाये कि इन सबका इलाज सम्भव होगा तो भी एक चौथाई बच्चे ठीक नहीं किये जा सकते हैं। अभी भी पुरानी भ्रातियाँ और धारणाएँ ऐसे बच्चों के जीवन के लिए अभिशाप बनी है जिसके कारण बच्चों को न घर में सम्मान मिलता है न बाहर।

वैज्ञानिकों का मानना है कि गर्भावस्था में महिलाओं का कुपोषण ही इसका सबसे बड़ा कारण है। तब सच्ची जागरूकता और सही कदम यह होगा कि बताया जाये कि पिंकी की मुस्कान वापस आएगी भरपूर पोषण से और देश के गरीब मेहनतकशों का पोषण तब नहीं हो सकता जब तक गरीबी कायम है। इसकी बुनियाद में है असमानता पर टिकी सामाजिक व्यवस्था।

ऐसे में सच्ची जागरूकता यह होगी कि एक कला और लघुवृत्तचित्र चीख-चीखकर बताये कि पिंकी मुस्करायेगी अगर सभी गरीब संगठित होकर अपने अधिकार के लिए आज के निजाम के खिलाफ बगावत का बिगुल फूंक दें। वह दिखायेगी आज के विश्व की नंगी सच्चाई कि दुनिया भर में कुपोषण की शिकार कुल आबादी का 27% और कम वजन वाले बच्चों का 43% हिस्सा के बल पर भारत में है और जो भारत आज विश्व की आर्थिक महाशक्ति बनने के लिए अग्रसर है वहाँ मजदूरों और गरीबों के श्रम के शोषण ने भूख और कुपोषण का ग्राफ भी ऊँचा होता जा रहा है।

हालांकि इस गणित को समझना कोई मुश्किल नहीं है जिस सामाजिक ढाँचे में आबादी का एक बड़ा हिस्सा कुपोषण और भूखमरी का सामना कर रहा है। वहाँ केवल विकास दर के बूते खुशहाली का दावा किया जाये। लेकिन 'स्माइल पिंकी' में यह गुस्सा गायब है। वह मुस्कान लौटाने की जो राह दिखाती है वह समस्या के मूल तो दूर सतही निदान भी प्रस्तुत नहीं करती। वह

करती है एक साजिश, समस्या पर पर्दा डालने का और पैदा करती है व्यवस्था मोह से भंग दिलों में व्यवस्था के प्रति आस्था, और ऑस्कर भी उसे इसी बात के लिए मिला है।

दूसरा प्रश्न यह कि पिंकी की मुस्कान का समाधान अगर हम एक बार प्लास्टिक सर्जरी को मान ले तो सवाल उठता है कि क्या ऐसे बच्चों के माँ-बाप अपने बच्चों के जीवन की मुस्कान की भीख मांगें? प्रश्न उठता है कि आखिर वे क्या कारण हैं जब दिन में 12-12 या 14-14 घण्टे कमरतोड़ मेहनत करने के बाद एक सामान्य-सी प्लास्टिक सर्जरी के लिए अपने बच्चे को लेकर मेहनतकश माँ-बाप दर-दर की ठोकर खाए। और अगर दूसरे माध्यम (अर्थात् चिकित्सकीय माध्यम) से भी वृत्तचित्र 'स्माइल पिंकी' पिंकी जैसे तमाम बच्चों की मुस्कान के लिए जागरूकता फैलाना चाहता है तो वह दिखायेगा कि कैसे चिकित्सा बाजार में बिकने वाला माल बन चुकी है; कैसे जीवन प्रदायी दवायें उनसे दूर होती जा रही है

जिनको उनकी सबसे ज्यादा जरूरत है। वह आगाज करेगा कि चिकित्सकीय सुविधा तभी समाधान बन सकती है जब इसे मुनाफे की जकड़बन्दी से मुक्त किया जा सके; वह बताएगी कि एक गरीब तभी इलाज करवा सकेगा जब उसकी कमरतोड़ मेहनत का शोषण बन्द हो सकेगा। अगर 'स्माइल पिंकी' वास्तव में पिंकी जैसे बच्चों के लिए प्रयास होता तो वह दिखाती पिंकी के दारुण दुःख के मूलबीज कुपोषण की विधानकर्ता शोषणकारी व्यवस्था में निहित हैं और उसका समाधान वह एक चिकित्सकीय परिणति से नहीं बल्कि उस आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक घटाटोप के हर संजाल को छिन्न-भिन्न करने वाली क्रान्तिकारी चिकित्सा से दर्शाती। लेकिन 'स्माइल पिंकी' ऐसा नहीं करेगी क्योंकि ऐसा करने से हिलने लगेगा वह सिंहासन व राजदण्ड जो देता है मेगन मायलन के हाथ में 14 कैरेट गोल्ड प्लेटेड त्रिटेनियम की बनी 'एकेडेमी अवार्ड ऑफ मेरिट' की वह 13.5 इंच की चमचमाती ट्राफी!

## दिल्ली मेट्रो रेल के कामगारों का अपनी कानूनी माँगों के लिए संघर्ष

(पेज 24 से जारी)

मेट्रो प्रशासन को अपनी जायज माँगों पर झुका सकते हैं।

इस प्रदर्शन के बाद मेट्रो कामगार संघर्ष समिति के इस आन्दोलन में मेट्रो फीडर बस सेवा के चालक व परिचालक भी शामिल हो गये। मेट्रो फीडर बस सेवा दिल्ली के अलग-अलग क्षेत्रों से लोगों को मेट्रो रेल के स्टेशनों तक ले जाने का काम करती है। यहाँ पर भी ठेका प्रथा का राज है और राजस्थान-बॉम्बे ट्रांसपोर्ट कम्पनी नामक कम्पनी को ठेका मिला हुआ है। यह कम्पनी भी चालकों व परिचालकों का जमकर शोषण-उत्पीड़न कर रही है। पहले भी इन चालकों-परिचालकों ने आन्दोलन किया था लेकिन वह सफल नहीं हो पाया था। इसके बाद ये कर्मचारी मेट्रो सफाई मजदूरों के आन्दोलन के साथ आकर शामिल हो गये। इससे पूरे आन्दोलन की ताकत में भारी वृद्धि आई। 5 मई को मेट्रो कामगार संघर्ष समिति ने मेट्रो भवन पर फिर से एक जोरदार प्रदर्शन किया जिसमें बड़े पैमाने पर मजदूरों ने शिरकत की। लेकिन इस बार मेट्रो प्रशासन ने दिल्ली पुलिस के साथ पहले से ही गठजोड़ कायम कर रखा था। मजदूरों के प्रदर्शन के अभी 15 मिनट ही बीते थे कि पुलिस ने धारा 144 तोड़ने के आरोप में 46 मेट्रो आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया। उन्हें गिरफ्तार करके तिहाड़ जेल ले जाया गया, जहाँ अगले दिन शाम को उनकी जमानत हो गई। लेकिन इस दौर में पूरे दिल्ली शहर में यह बात आग की तरह फैल गई कि मेट्रो कर्मियों का कोई आन्दोलन चल रहा है। मेट्रो प्रशासन पर भारी दबाव बना और वह सफाईयों देता अभी तक घूम रहा है। मेट्रो कामगार संघर्ष समिति के प्रवक्ता ने बताया कि जेल जाने के बाद मेट्रो के आन्दोलनकारियों का जोश ठण्डा नहीं पड़ा है बल्कि वे संघर्ष के अगले कदम की तैयारी में लग गये हैं। आगे की योजना सभी मेट्रो कामगारों की एक यूनियन खड़ी करना और श्रम अधिकारों के नग्न उल्लंघन के खिलाफ मेट्रो प्रशासन और ठेकेदारों पर कानूनी कार्रवाई करना।

### घोषणापत्र का प्रपत्र : प्रपत्र 4 (नियम 8 के अन्तर्गत)

पत्रिका का नाम	मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान
पत्रिका की भाषा	हिन्दी
आवर्तिता	त्रैमासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	दस रुपये
प्रकाशक का नाम	अभिनव सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94
प्रकाशन का स्थान	दिल्ली
मुद्रक का नाम	अभिनव सिन्हा
पता	बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94
मुद्रणालय का नाम	रुचिका प्रिण्टर्स, 1/10665, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32
सम्पादक का नाम	अभिनव सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94
स्वामी का नाम	अभिनव सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय

मैं, अभिनव सिन्हा, यह घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य है।

हस्ताक्षर

जन्मतिथि (9 अप्रैल) और पुण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर

Hkkj rh; Hkkfr doknh i jEi jk dsvkèkfu d fpur d  
vkj ^l kLÑfrd l uki fr\* jkgy l kÑR; k; u

कठिनाइयों से रीता जीवन  
मेरे लिए नहीं  
नहीं  
मेरे तूफानी मन को स्वीकार नहीं  
मुझे तो चाहिए महान ऊँचा लक्ष्य  
और उसके लिए ताउम्र  
संघर्षों का सिलसिला।

- मार्क्स

महापण्डित-महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन के विराट व्यक्तित्व पर ये पंक्तियाँ बिल्कुल सटीक बैठती हैं। उनकी जीवन यात्रा भी अविराम संघर्षशील लेखक और महान ऊँचे लक्ष्य के लिए पथान्वेषक की रही है। वे यून ही कलमधिसू बनकर नहीं गए, बल्कि आजीवन यथास्थितिवादी, ठहरावग्रस्त, रूढ़िवादी सामाजिक ढाँचे को ध्वस्त करने के लिए भरपूर प्रहार करते रहे। या यून कहे कि इतिहास की प्रगति को रोकने वाली नकारात्मक परम्पराओं पर प्रहार करना। रूढ़ियों की ध्वजियाँ उड़ा देना। ये ही राहुल के चिन्तन का केन्द्रबिन्दु रहे हैं।

आगे बढ़ने से पहले हम इस सवाल पर बात करना जरूरी समझते हैं कि राहुल को स्मरण करने के मायने क्या हैं? हम क्यों याद कर रहे हैं? क्या इसलिए कि वे 26 भाषाओं के ज्ञाता थे? या ज्ञान की तमाम शाखाओं पर उनकी जबरदस्त पकड़ थी याकि वे जननेता, पुरातत्ववेत्ता आदि-आदि थे। इसलिये? नहीं, हम महज इसलिये नहीं याद कर रहे हैं। यह कोई बड़ा कारण नहीं हो सकता। वैसे भी हमारे देश में 'विद्वत्तजनों' की कमी नहीं रही है। बस एक चीज है जो उन्हें महामानव का दर्जा देती है। तमाम 'विद्वत्तजनों' से अलहिदा एक पहचान देती है। वह है जीवन व व्यवहार की समरूपता। सिद्धान्त एवं व्यवहार की कसौटी पर लगातार स्वयं को परखते रहने वाले शख्स की। यही चीज राहुल को आधुनिक भारत का संग्रामी लेखक बनाती है। नायकत्व प्रदान करती है। उनका जीवन प्रवाह इस बात का गवाह है।

राहुल सांकृत्यायन का जन्म 9 अप्रैल 1893 को हुआ था। पूर्वी उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के छोटे से गाँव पन्दहा में केदारनाथ पाण्डेय के रूप में जन्मे राहुल ने बचपन में ही उस ठहरे हुए, रूढ़ियों में जकड़े समाज से विद्रोह किया और घर से भाग गये। इधर-उधर घूमने के बाद वह साधुओं की एक मण्डली में शामिल हो गये और फिर 13 साल की उम्र में एक मठ के महन्त बन गये। मठ में रहते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म के ढोंग-पाखण्ड

और विकृतियों को नज़दीक से देखा और उसे छोड़कर आर्यसमाजी हो गये।

“ये धार्मिक महात्माओं के मठ और आश्रम ढोंग के प्रचार के लिए खुली पाठशालायें हैं, और धर्म प्रचार क्या पूरे सौ सैकड़ों नफे का रोजगार है। अधिकांश लोग इसमें अपने व्यवसाय के ख्याल से जुटे हुए हैं।”

एक युवा आर्यसमाजी साधु के रूप में उन्होंने देश भर का भ्रमण किया और समाज में रूढ़ियों के खिलाफ अलख जगाते घूमते रहे। इसी दौरान क्रान्तिकारियों और कम्युनिस्टों से भी वह मिलते रहे और आजादी की लड़ाई से उनका जुड़ाव हुआ। भारतीय समाज के सदियों पुराने गतिरोध, अन्धविश्वास, कूपमण्डकता और जाति-पाँत जैसी सामाजिक बुराइयों को लेकर उनके विद्रोही मन में बेचैनी बढ़ती रही और उन्हें लगने लगा कि आर्यसमाज इन सवालों का हल नहीं हो सकता।

ऊँच-नीच के बन्धनों और रूढ़ियों से मुक्त दर्शन की खोज उन्हें बौद्ध धर्म और दर्शन की ओर ले गयी और वह बौद्ध भिक्षु बन गये। तभी उन्होंने गौतम बुद्ध के बेटे के नाम पर अपना नाम राहुल रखा। बौद्ध भिक्षु के रूप उन्होंने कई देशों की यात्राएँ कीं और तिब्बत के मठों में दबे पड़े सैकड़ों दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थों को 22 खच्चरों पर लादकर भारत लाये, और पहली बार दुनिया को उनके बारे में मालूम पड़ा। बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की पोंगापंथी, छुआ-छूत, भेदभाव और घटियाई से काफी हद तक मुक्त और भौतिकवादी दर्शन पर आधारित था, लेकिन राहुल के दिमाग में लगातार उठते सवालों के जवाब उसके पास भी नहीं थे। समानता पर टिके, अन्याय, शोषण और हर किस्म के भेदभाव से मुक्त समाज बनाने के रास्ते की खोज उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा तक ले गयी। उन्होंने गेरुआ चोगा उतारकर मजूदूरों-किसानों के लिए लड़ने और उनके दिमागों पर कसी बेड़ियों को तोड़ डालने को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उनका आप्त वाक्य था – भागो नहीं (दुनिया को) बदलो। उनके लिए मानव जाति का ज्ञान केवल विश्व को जानने के लिए नहीं बल्कि उसे बदलने के लिए है। बदलाव की यही छटपटाहट ही राहुल सांकृत्यायन के सतत गतिमान जीवन की पहचान है।

राहुल का कहना था कि 'रूढ़ियों' को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं है।' हमें स्वयं को सामाजिक विकृतियों के खिलाफ लड़ने के लिए प्रस्तुत करना होगा। 'आँख मूँदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। हमें अपनी मानसिक दासता

की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदरदी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार होना चाहिए। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज्यादा जरूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें आगे-पीछे-दाहिने-बायें दोनों हाथों से नंगी तलवारें नचाते हुए अपनी सभी रुढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना चाहिए। क्रान्ति प्रचण्ड आग है, वह गाँव के एक झोंपड़े को जलाकर चली नहीं जायेगी वह उसके कच्चे-पक्के सभी घरों को जलाकर राख कर देगी और हमें नये सिरे से नये महल बनाने के लिए नींव डालनी पड़ेगी। यह उद्घोष वे किसी उपदेशक की भाँति नहीं बल्कि हजारों-हजार बन्धनों में जकड़ी बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी व व्यापक मानव समाज में परिवर्तनकारी विचारों को ले जाने वाले क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी के रूप में कर रहे थे। जो आम जनता में अटूट आस्था रखता हो, उनके जीवन को बेहद नज़दीक से समझने के साथ-साथ उन्हें बेइन्तहा प्यार करता हो। उनकी राहों को मुक्ति स्वप्नों से आलोकित कर रहा हो।

उनका मानना था कि जनता ही इतिहास निर्मात्री है और उसे जगाये बगैर कोई भी समाज मुक्ति नहीं पा सकता। आम जनमानस को सामाजिक बदलाव के विज्ञान से परिचित कराने के लिए उन्होंने आम लोगों की बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल किया। बेहद सुगम व सरल भाषा में उन्होंने भागो नहीं (दुनिया को) बदलो, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों आदि छोटी-छोटी पुस्तकाएँ लिखकर लोगों को जगाने का काम किया। उनका मानना था कि 'साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी है। वह सिपाही भी है और सिपहसलार भी।'

चीनी साहित्यकार लू-शुन को चीन का सांस्कृतिक सेनापति कहा जाता है। जिन्होंने चीनी जनता की मानसिक-वैचारिक-सामाजिक जरूरत को समझा और लिखा। चीन की बेहद पिछड़ी, रूढ़िवादी जनता में प्रगति विरोधी परम्परा के खिलाफ लड़ने का माद्दा पैदा किया। पुरानी कथाओं को नये रूप में पेश करके लू-शुन ने जिस तरह आम जन की सृजनात्मकता को निर्बन्ध किया उसे सांस्कृतिक औजार सौंपा, लगभग वही काम भारत में राहुल ने भी किया। वे वर्तमान सामाजिक रूढ़ियों की तलाश में अतीत तक की यात्रा करते हैं। उसकी जड़ें तलाशते हैं। कूपमण्डूकता, अन्धविश्वास की जांच-पड़ताल वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हुए उसकी पुर्नव्याख्या करते हैं। फलतः हम ऐसी सामाजिक दृष्टि से लैस होते हैं जो हमें अतीत की नहीं बल्कि भविष्योन्मुखी बनाती है। इसी ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण के चलते ही राहुल का लेखन समाज की महज व्याख्या ही नहीं बदलने के लिए भी प्रेरित करता है। और वे आधुनिक भारत के भौतिकवादी चिन्तक राधामोहन गोकुल जी, शहीदे-आज़म भगत सिंह की अग्रवर्ती कड़ी के रूप में सामने आते हैं। यही नहीं, हम राहुल की गणना अगर यूरोपीय पुर्नजागरण-प्रबोधनकालीन क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी-दिदेरो, वाल्टेयर से करे तो कोई अतिरेक नहीं होगा। भारत का 'सांस्कृतिक सेनापति' जो आजीवन जन-जीवन की भट्ठी में बेहतर समाज बनाने के औजार गढ़ता रहा। जनता के संघर्षों का मोर्चा हो या सामन्तों-जमींदारों के शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मोर्चा हो, वह हमेशा अगली कतार में रहा। यातनाएँ

झेलीं। जेल गए। जमींदारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला किया लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो कभी संघर्ष के पीछे हटे न ही कलम रुकी।

राहुल का जीवन अपने आप में उन कर्मविरत 'विद्वतजनों' के लिए आईना है जो ज़िन्दगी भर वातानुकूलित प्रासादों में बैठकर श्रमरत जनों पर मोटे-मोटे पोथयने रचने में लगे रहते हैं। जो 'जनसंगऊष्मा' से कोसों दूर हैं। आधुनिक नहीं 'उत्तर-आधुनिकों' की जमात में बैठकर 'दुनिया के अन्त' की भविष्यवाणी पर गलचौर करते रहते हैं। इन मौके की नज़ाकत भांपकर लिखने वाले 'लिक्खाड़ों' से, शब्दों की बाजीगरी करते 'कलमकारों' से कोई पूछे कि आखिर वे क्यों लिखते हैं? किसके लिए लिखते हैं? क्या उनके लेखन का सामाजिक उद्देश्य भी है? या यूँ ही महज शगल या मनबहलाव के लिए कागज पर रोशनाई फेरने में दत्तचित्त हैं। वे दौड़ते तो हैं लेकिन वजीफा या पुरस्कार पाने के पीछे हांफते-हांफते। ऐसे तिलचट्टे व झींगुर भी यदा-कदा, राहुल सांकृत्यायन व मुक्तिबोध जैसे लेखकों का नाम बड़े आदरभाव से लेते देख पड़ते हैं। लेकिन जीवन में वे उनके पासंग भी नहीं बैठते।

आज के समय में राहुल जैसे लेखकों का स्मरण और उनके विचारों को युवाओं तक ले जाना बेहद जरूरी है। यह अपनी उस परम्परा का पुनःस्मरण भी है जिसकी हम विरासत हैं। जिसे लगातार धुंधला करने की साजिशें चल रही हैं। 21वीं सदी में जब हम अपने देश-समाज पर निगाह डालते हैं तो आज भी वो अंधेरे कोने काफी बड़े पैमाने पर दिख जाते हैं जिनके खिलाफ सत्त संघर्ष ही राहुल की पहचान थी। हमारा समाज गहरी निराशा, गतिरोध और जड़ता के अंधेरे गर्त में पड़ा हुआ है। पुरातनपंथी मूल्य-मान्यताओं और रूढ़ियों के कीड़े बिलबिला रहे हैं। फासीवादी ताकतें तमाम सड़े-गले तौर तरीकों को जनता पर थोपकर इतिहास के रथ को पीछे धकेलना चाहती हैं ताकि मुट्ठी भर शासक वर्ग व्यापक मेहनतकश आबादी को सरेआम लूट सके। ऐसे विपरीतम समय में हमें राहुल सरीखे जनता के लेखकों से सीखने की जरूरत है। जिससे हम आज की चुनौतियों का सामना कर सकें।

हम आह्वान के पाठकों के लिए राहुल के जन्मतिथि (9 अप्रैल) और पूण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर उनका महत्वपूर्ण लेख 'धर्म और ईश्वर' प्रस्तुत कर रहे हैं। आज तमाम तरीके के धर्म के कारोबारियों और ढपोरशांखियों का बोलबाला है। ऐसे में प्रस्तुत लेख आज भी प्रासंगिक है।

## धर्म और ईश्वर

### ● राहुल सांकृत्यायन

धर्म या मज़हब का असली रूप क्या है? मनुष्य-जाति के शैशव की मानसिक दुर्बलताओं और उससे उत्पन्न मिथ्या विश्वासों का समूह ही धर्म है। यदि उसमें और भी कुछ है, तो वह है पुरोहितों और सत्ताधारियों के धोखे-फरेब, जिनसे वह अपनी भेड़ों को अपने गल्ले से बाहर जाने देना नहीं चाहते। मनुष्य के मानसिक विकास के साथ-साथ यद्यपि कितने ही अंशों में धर्म

ने भी परिवर्तन किया है, कितने ही नाम भी उसने बदले हैं, तो भी उनसे उसके आन्तरिक रूप में परिवर्तन नहीं हुआ है। वह आज भी वैसा ही हजारों मूढ़ विश्वासों का पोषक और मनुष्य की मानसिक दासताओं का समर्थक है, जैसा कि पाँच हजार वर्ष पूर्व था। सूत्र वही है, सिर्फ भाष्य बदलते गये हैं। यहीं भूत-प्रेत, ओझा-गुणी है, जिनको देखकर शिक्षित वर्ग नाक-भौं सिकोड़ता है—कुछ गौणों की बात छोड़ दीजिए, वैसे कदरदान शिक्षितों में आजकल दुर्लभ है—लेकिन उन्हीं बातों को यदि नये रूप में थ्योसोफी के से लच्छेदार शब्दों तथा साइंस की पुट के साथ जब पेश किया जाता है, तो बड़े-बड़े दिमागवाले, अकल बेच खाने के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि आप मज़हबों के इतिहास, उनके भूत और वर्तमान नेताओं की जीवनियों को ध्यानपूर्वक, नजदीक से पढ़ें, तो मालूम होगा कि मज़हब में पहले नम्बर पर पक्के धूर्त या पागल ही पहुँच सकते हैं। भारत में ऐसे सिद्ध और पहुँचे हुए महापुरुष बहुत से हैं और हुए हैं, जिनके आचरण को भीतर से देखने पर वह रसपुटिन के छोटे-बड़े संस्करण सिद्ध होंगे। एक पवित्र नगर में कुछ समय पूर्व एक परम त्यागी महात्मा रहते थे। उनके जीते जी ही लोग उन्हें सिद्ध जीवन्मुक्त मानकर पूजा करते थे, पीछे की तो बात ही क्या? स्थानीय जानकर लोग उनकी खेले की दो पुत्रों की ओर अंगुली उठाकर कहते थे—महात्मा का कितना ही चढ़ावा अपनी इन सन्तानों को धनी बनाने में लगा। एक दूसरे पवित्र नगर के एक सिद्ध महात्मा थे, जिनके मरे बहुत समय नहीं गुज़रा है और उन्हें उनके भक्त भगवान के अवतार समझते थे। बाहर के कितने ही अन्धे भक्त उनकी विचित्र रहन-सहन, वेश-भूषा, आकार-प्रकार से प्रभावित हो गद्गद् हो जाते थे। लेकिन इस सिद्ध का भीतरी जीवन कैसा था? पहले वह जिस स्थान में रहते थे, वहाँ एक नौकरानी के साथ उनके अनुचित सम्बन्ध को देख, लोग मार-पीट करने के लिए उतारू हो गये, जिसके मारे वह भागकर अपने ही जैसे एक दूसरे सिद्ध पुरुष के स्थान में चले गए। व्यक्तिगत अनुभव से ऐसे पचासों उदाहरण बतलाए जा सकते हैं। इन उदाहरणों को देखकर मनुष्य की बुद्धि पर तरस आता है, उन धूर्तों के लिए तो नहीं, उनका तो मत ही है—‘रोटी खाइए घी शक्कर से, दुनिया ठगिए मक्कर से’। यदि किन्हीं सिद्धों में इस धोखाधड़ी से कुछ अधिक है, तो वह है हेप्नोटिज़्म या त्राटक की कुछ मानसिक शक्तियाँ, जिनके बल पर वह और उनके अनुयायी हजारों झूठों का प्रचार करते हैं और भरसक यह भी कोशिश करते हैं कि विद्वान उनका वैज्ञानिक विश्लेषण न कर सकें।

धर्म और ईश्वर का प्रायः अटूट सम्बन्ध है। अच्छा, तो ईश्वर क्या है? यह भी मनुष्य के शैशव काल के भयभीत अन्तःकरण की सृष्टि का एक विकसित रूप है। मनुष्य वन्य अवस्था में, जबकि उसकी बुद्धि का विकास साधारण बच्चे के ही समान था—अंधेरे, अपरिचित स्थान और वस्तु से भय खाता था। बिजली, आग जैसे शक्तिशाली पदार्थ तो उसके लिए और भी भय का कारण होते थे, और उसने उनमें देवताओं की कल्पना की। उसके अपने समय के बली और वीर पुरुष भी मरकर धीरे-धीरे इस देव मण्डली में शामिल होते गए। हर एक जाति में

ऐसे अनेक देव समुदाय थे, जिनके प्रभाव बड़प्पन के लिए उनकी आपस में प्रतिद्वन्द्विता रहती थी। स्वयं अपनी जाति के भीतर के देवताओं में भी बड़े-छोटे का ख्याल था। पीछे मानव समाज के सामन्तों और महासामन्तों को देख ‘कौन बड़ा’ ‘कौन बड़ा’ की तलाश ने संसार के निर्माता एक ईश्वर की सृष्टि की; और मानसिक विकास के साथ-साथ उसे कितने ही और भी उत्तम गुण प्रदान किए गए। यह हुई ईश्वर की उत्पत्ति। वस्तुतः ईश्वर मनुष्य का मानस पुत्र है।

हम इससे इनकार नहीं करते कि ईश्वर का अस्तित्व चाहे कल्पना ही के संसार में हो, तो भी अतीत काल में इस विचार के कितने ही लोगों को सन्तोष और सहारा मिला होगा। लेकिन साथ ही उसके कारण मनुष्य को यातनाएँ भी लाखों सहनी पड़ीं। एक ईश्वर मानने वाले धर्मों की अपेक्षा अनेक देवता मानने वाले धर्म हजार गुना उदार रहे हैं। उनके ईश्वरों की संख्या अपरिमित होने से वहाँ औरों का समावेश आसानी से हो सकता था। किन्तु एक ईश्वरवादी वैसा करके अपने अकेले ईश्वर की हस्ती को खतरे में नहीं डाल सकते थे। आप दुनिया के एक-ईश्वरवादी धर्मों के पिछले दो हजार वर्ष के इतिहास को उठाकर देख डालिए, मालूम होगा कि वह सभ्यता, कला, विद्या, विचार स्वातंत्र्य और स्वयं मनुष्य के प्राणों के भी सबसे बड़े शत्रु थे। उन्होंने हजारों बड़े-बड़े पुस्तकालय और करोड़ों पुस्तकें आग में डाल दी। सौन्दर्य और कोमल भावों के साकार रूप, कितने ही कलाकारों की सुन्दर मूर्तियों, चित्रों और इमारतों को नष्ट कर दिया। हजारों विद्या व्यसनियों और विद्वानों के जीवन को समाप्त कर, स्वतंत्र विचारों का गला घोंटा। मनुष्य की मानसिक प्रगति को कम से कम एक हजार वर्ष तक के लिए उन्होंने रोक ही रक्खा, बल्कि पहिले की प्राप्त सफलताओं के प्रभाव को बहुत कुछ नष्ट कर डाला। और करोड़ों निर्दोष नर-नारियों और बच्चों की हत्या की? यह तो उनके अपने धर्म प्रचार का एक प्रधान साधन थी। वे जिस-जिस देश में गए, आग और तलवार लेकर गए। पहले तो इनके फन्दे में फँसी जातियाँ अफीम के नशे में थीं, उन्हें इसका ख्याल ही नहीं हो रहा था कि उनकी संस्कृति की चिरसंचित जातीय निधि नष्ट की जा रही है। पीछे जब नशा टूटा तो देखा कि पूर्वजों की सभी उत्तम कृतियाँ नष्ट कर दी गईं। जर्मन जाति में ईसाइयों का एक-ईश्वरवाद तलवार के बल ही फैलाया गया। उस समय पुराने धर्म के साथ-साथ जर्मन जाति का व्यक्तित्व भी मिटा देना आवश्यक समझा गया। उनकी लिपि को धत्ता बताया गया। उनके साहित्य को खोज-खोजकर जलाया गया। उनके मन्दिरों को ही बर्बाद नहीं किया गया, बल्कि यह सोचकर कि कहीं ये लोग अपने ओक वृक्षों की पूजा करके धर्मभ्रष्ट न हो जाएँ, लाखों विशाल ओकवृक्ष काट डाले गए। एक-ईश्वरवादियों के ऐसे कारनामों एशिया में ही नहीं, अमेरिका की माया और अजतक जैसी सभ्यताओं के संहार के कारण हुए। अपने नाम पर सैकड़ों वर्षों तक इस प्रकार के भयंकर अत्याचार करते, खून की नदी बहाते देख भी, यदि ईश्वर रोकने के लिए नहीं आया तो इससे बढ़कर उसके न होने का और दूसरा प्रमाण क्या चाहिए?

कहा जा सकता है, अब धर्म और ईश्वर उतने खतरनाक

चीज नहीं है, किन्तु बात क्या वैसी है? क्या धर्म के विषवाले दौंत् तोड़ दिए गए? कम-से-कम इस समय भी इसके मारे परेशान है। बराबर धर्मान्ध लोग खून-खराबा करते ही जा रहे हैं। आप कहेंगे, यह धर्म का दोष नहीं, यह तो प्रभुता और धन के लिए हो रहा है। यह बिल्कुल ठीक है। एकेश्वरवादियों के बड़े-बड़े युद्ध के भीतर भी प्रभुता और धन का लोभ ही काम कर रहा था। प्रभुता और धन के लोभ की, वस्तुतः वह उपज है भी; तो भी साधारण जनता के सामने उन्हें बड़े सौम्य और मोहक रूप में रखा जाता है। चाहे आप कितना ही परिष्कृत करना चाहें, शुद्ध से शुद्ध बना दें, धर्म पुराने का पूजक और भविष्य की प्रगति का विरोधी रहेगा ही। वह तो श्रद्धा और भक्ति के नाम पर हमारे गले में मुर्दा बाँधने का ही प्रयत्न करेगा। यह संसार जो प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है, और परिवर्तन भी ऐसा कि इसका अतीत हमेशा अतीत ही रहेगा, वर्तमान का रूप नहीं धारण कर सकेगा। ऐसी स्थिति होने पर स्थिरवादी धर्म हमारे कभी सहायक नहीं हो सकते। जगत की गति के साथ हमें भी सरपट दौड़ना चाहिए, किन्तु धर्म हमें खींचकर पीछे रखना चाहते हैं। क्या हमारे पिछड़ने से संसार चक्र हमारी प्रतीक्षा के लिए खड़ा हो जाएगा? सामाजिक विषमता के नाश, निकम्मी और अनपेक्षित सन्तान के निरोध, आर्थिक समस्याओं के नए हल-सभी बातों में तो यह मजहब प्राणपन से हमारा विरोध करते हैं; हमारी समस्याओं को और अधिक उलझाना और प्रगति विरोधियों का साथ देना ही एकमात्र इनका कर्तव्य रह गया है।

आप कहेंगे आप पिछली सदी की बात कर रहे हैं, जबकि बड़े-बड़े वैज्ञानिक प्रायः अधार्मिक होते थे; अब तक कितने ही चोटी के वैज्ञानिक सीधे रास्ते पर आ रहे हैं, और ईश्वर तथा धर्म के पोषक बन रहे हैं। हाँ, यदि भीतरी रहस्य न जानकर नाम पर जाएंगे, तो आपको जरूर ऐसा भ्रम होगा। किन्तु विज्ञान बेचारे का इसमें कोई दोष नहीं। आजकल तो सारा संसार, बिना अपवाद के, दो पक्षों में बँट गया है—एक ओर वे लोग हैं, जो व्यक्तियों के आर्थिक स्वार्थों को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, अर्थात् जो जाने या अनजाने, प्रकट या अप्रकट रूप से पूँजीवाद के पोषक हैं दूसरी ओर वे हैं, जो समाज का कल्याण चाहते हैं, और उसके लिए साम्यवाद का समर्थन करते हैं। पिछली सदी में भी ऐसे वैज्ञानिक रहे होंगे, जिन्हें व्यक्ति के आर्थिक स्वार्थों को अक्षुण्ण रखना अभीष्ट था; किन्तु तो भी वह धर्म के विरुद्ध अपनी स्पष्ट सम्मति दे सकते थे। कारण? उस समय साम्यवाद हवा की बात थी। उसकी सफलता का उन्हें विश्वास न था। किन्तु, अब साम्यवाद भूमि की ठोस चीज है। अब वह विकृत मस्तिष्कों की बलबलाहट नहीं रह गया। इसीलिए पूँजीवादी जहाँ साम्यवाद के खिलाफ दूसरे तरह-तरह के षड्यंत्र रच रहे हैं, वहाँ भय और प्रलोभन द्वारा कितने ही ढिलमिल-यकीन वैज्ञानिकों से भी अपने पक्ष में सम्मति लेते हैं। लेखक के इंग्लैण्ड में रहे समय एक प्रामाणिक पुरुष ने नोबल पुरस्कार प्राप्त एक वैज्ञानिक के बारे में कहा था—“जानते हैं, अमुक सज्जन धर्म और मिथ्या विश्वास के प्रचार में इतनी सरगमी क्यों दिखाते हैं? इनका वैज्ञानिक दिमाग खत्म हो चुका है। जिस विश्वविद्यालय में यह अध्यापक है, यह एक प्रकार से अमुक करोड़पति के परिवार की

निजी चीज सी है और यह वैज्ञानिक महाशय किसी रूप में कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझते हैं।’ हम नहीं कहते कि धर्म का पक्ष लेने वाले सभी वैज्ञानिक इसी श्रेणी में के हैं। कितने तो स्वयं पूँजीपति है, इसलिए यह पूँजीवाद की रक्षा के महान अस्त्र धर्म का पक्ष ग्रहण करना चाहते हैं। कितने ही, श्रमजीवियों के जीवन की कठिनाइयों को जानते हैं, और उस श्रेणी में सम्मिलित होने से डरते हैं। और कुछ उस आयु को पहुँच गए है, जब अतीत की अत्यन्त आसक्ति मन को नए विचारों की ग्रहण करने में असमर्थ कर देती है। मनुष्य की आयु के पहिले चालीस-पैंतालीस वर्ष ही ऐसे हैं, जबकि वह स्वच्छंदतापूर्वक चिन्तन और विचार विनिमय कर सकता है; पीछे गोधूली के धुँधलेपन में उसे अतीत की स्मृति के सहारे पुरानी बातें ही दिखलाई देती हैं। संसार में इस नियम के अपवाद बहुत ही कम होते हैं।

इस प्रकार सारी दुनिया के विचार पक्ष और विपक्ष में बँटे हुए हैं; ऐसी अवस्था में किसी की सम्मति को पकड़कर चलाना उचित नहीं है। आपको अपनी बुद्धि स्वतंत्र रखनी होगी, और उसी को अन्तिम निर्णायक मानना होगा।



### भगतसिंह ने कहा...

प्रगति के समर्थक प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह पुराने विश्वास से सम्बन्धित हर बात की आलोचना करे, उसमें अविश्वास करे और उसे चुनौती दे। प्रचलित विश्वास की एक-एक बात के हर कोने-अंतरे की विवेकपूर्ण जांच पड़ताल उसे करनी होगी। यदि कोई विवेकपूर्ण ढंग से पर्याप्त सोच-विचार के बाद किसी सिद्धान्त या दर्शन में विश्वास करता है तो उसके विश्वास का स्वागत है। उसकी तर्क-पद्धति भ्रान्तिपूर्ण, गलत, पथ-भ्रष्ट और कदाचित हेत्वाभासी हो सकती है, लेकिन ऐसा आदमी सुधरकर सही रास्ते पर आ सकता है, क्योंकि विवेक का ध्रुवतारा सही रास्ता बनाता हुआ उसके जीवन में चमकता रहता है। मगर कोरा विश्वास और अन्धविश्वास खतरनाक होता है। क्योंकि वह दिमाग को कुन्द करता है और आदमी को प्रतिक्रियावादी बना देता है।

(‘मैं नास्तिक क्यों हूँ?’ लेख से)

tupruk }kjk ØkfuRdkjh  
i xfr'khy l kfgR; dh  
i furd i n'kZuh

जनचेतना सचल वाहन की 70 दिन की पुस्तक प्रदर्शनी 6 जनवरी से 17 मार्च तक दिलशाद गार्डन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय (आर्ट्स फैकल्टी, हिन्दू कालेज, रामजस कालेज, स्कूल आफ बिजनस, सत्यवती कालेज, श्रदानन्द कालेज आदि तमाम कालेजों, हास्टलों तथा उससे सटे तमाम आवासीय परिसरों और बाज़ारों) में लगाई गई। फिलहाल यह प्रदर्शनी दिल्ली के रोहणी, बादली आदि इलाकों में जारी है।

दिल्ली विश्वविद्यालय और दिलशाद गार्डन इलाके में जारी प्रदर्शनी के दौरान जनचेतना सचल प्रदर्शनी वाहन पर 'दिशा छात्र संगठन' और 'नौजवान भारत सभा' के वालंटियर मौजूद थे। ये कार्यकर्ता वहाँ आने वाले नौजवानों और नागरिकों को जनचेतना की पूरी सांस्कृतिक-वैचारिक मुहिम से अवगत करा रहे थे और बता रहे थे आज के समय में जनता के इंकलाबी आन्दोलनों को खड़ा करने के लिए एक क्रान्तिकारी संस्कृति और क्रान्तिकारी वैकल्पिक मीडिया को खड़ा करना बेहद ज़रूरी है। सभी मीडिया घराने, चैनल, अखबार आदि किसी न किसी पूँजीपति घराने या कारपोरेट घराने के हाथ में हैं जो उसी संस्कृति और खबरों को लोगों तक पहुँचाते हैं जिसमें उनका हित होता है। यही कारण है कि मीडिया तर्क, वैज्ञानिकता, संवेदनशीलता आदि का माध्यम होने की बजाय खाऊ-पिऊ संस्कृति, अन्धविश्वास, ढकोसले, अमीरों की संस्कृति और गलाजत के प्रचार-प्रसार का जरिया बना हुआ है। बच्चों और नौजवानों की पूरी की पूरी पीढ़ियों की मानसिकता और संस्कृति को सांस्कृतिक-वैचारिक कचरा दूषित कर रहा है। ऐसे में एक वैकल्पिक क्रान्तिकारी संस्कृति की मुहिम के तौर पर जनचेतना देश के अलग-अलग हिस्सों में पुस्तक प्रदर्शनियाँ लगाता रहा है। इस प्रदर्शनी में न सिर्फ़ पूँजीवादी मीडिया की सच्चाई को उजागर किया गया बल्कि एक वैकल्पिक संस्कृति की मिसाल भी पेश की गई।

प्रदर्शनी में भगतसिंह, राहुल सांकृत्यायन, राधा मोहन गोकुलजी, प्रेमचन्द, आदि जैसे प्रखर भारतीय चिन्तकों, विचारकों, साहित्यकारों की रचनाएँ मौजूद थीं तो वहीं विश्व भर के प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों और चिन्तकों की रचनाएँ भी मौजूद थीं, जैसे, कार्ल मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्टालिन, माओ, क्रोपाटकिन, लिओ तोलस्तोय, गोर्की, चेखव, तुर्गनेव, दोस्तोयेव्स्की, अप्टन सिंकलेयर, हावर्ड फास्ट, आदि। इन पुस्तकों के अतिरिक्त वहाँ क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए तमाम अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ मौजूद थीं, जैसे, 'मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान', 'नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल', 'दायित्वबोध', 'सृजन परिप्रेक्ष्य' पंजाबी पत्रिकाएँ 'ललकार' व 'प्रतिबद्ध', अंग्रेज़ी पत्रिका 'प्रेक्सिस

कलोकियम', आदि। इसके अलावा वहाँ क्रान्तिकारी गीतों का कैसेट 'उजाले के दरीचे' भी मौजूद था।

दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रदर्शनी के दौरान धर्मध्वजाधारी संघी भगवा ब्रिगेड ने एक बार फिर अपनी नस्ल दिखाई और क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार-प्रसार की इस मुहिम पर हमला किया। ज्ञात हो कि जनचेतना की प्रदर्शनियों पर संघी गुण्डे पहले भी मेरठ, गाज़ियाबाद आदि में हमला कर चुके हैं। दिल्ली में होने वाला हमला उनका नवीनतम हमला था जिसमें उनके छात्र विंग अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के गुण्डे अपने प्रादेशिक नेता के नेतृत्व में आए थे। लेकिन यहाँ दिशा छात्र संगठन के वालंटियरों ने उनका मुँहतोड़ जवाब दिया और इन हमलावरों को वहाँ से मारकर खदेड़ दिया। इससे पता चलता है कि फासीवादी गिरोह सिर्फ़ झुण्ड में पौरुष दिखला सकते हैं और वह भी कमज़ोर लोगों पर। जहाँ भी इंकलाबी नौजवान सीना तानकर उनके सामने टिक गये, वहाँ वे दुम दबाकर भाग खड़े होते हैं। इसके बाद कैम्पस के भीतर जनचेतना की पुस्तक प्रदर्शनी लगातार ठाठ से लगी और अपने समय को पूरा करने के बाद ही वहाँ से रवाना हुई।

fn'kk o ukØkk l }kjk i kp  
fnol h; ^; Øk j pukRedrk  
f'kfoj\* dk vk; kst u

दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा ने 20 से 24 मई तक पाँच दिनों के युवा रचनात्मकता शिविर का दिल्ली में आयोजन किया। यह शिविर बुद्ध विहार नामक इलाके के एक स्कूल में आयोजित किया गया। इसमें करीब 30 नौजवानों और छात्रों ने हिस्सा लिया जो दिशा व नौभास से जुड़े रहे हैं। शिविर के दौरान छात्रों-नौजवानों ने पढ़ाई, विचार-विमर्श, खेलकूद, कविता लेखन प्रतियोगिता, गीत-संगीत, मिमिक्री, व्याख्यान जैसी गतिविधियों में हिस्सा लिया। प्रत्येक दिन सत्र की शुरुआत किसी विषय पर किसी युवा साथी द्वारा व्याख्यान के साथ होती थी। इन पाँच दिनों के दौरान, 'क्रान्ति क्यों करें?', 'ब्रम्हाण्ड की उत्पत्ति', 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास', 'फासीवाद क्या है और उससे कैसे लड़ें?' जैसे विषयों पर वक्तव्य हुए। इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज में 'प्रेम, परम्परा और विद्रोह', 'भारत में बेरोज़गारी' आदि जैसे विषयों पर विचार-विमर्श चक्र का आयोजन किया गया। शाम के समय सभी नौजवान क्रिकेट, वॉलीबॉल, कबड्डी आदि जैसे शारीरिक खेलों या फिर डम्ब शराड, अन्ताक्षरी, पर्ची का रहस्य आदि जैसी मनोरंजक गतिविधियों में शिरकत करते थे। हर रात को सामाजिक आन्दोलनों से जुड़ी किसी फिल्म का शो होता था। इन पाँच दिनों के दौरान 'उमर मुख्तार: दि लायन ऑफ़ डेज़र्ट', 'दि ग्रेट डिक्टेटर', 'टेन डेज़ दैट शुक्र द वर्ल्ड', 'अक्टूबर' जैसी फिल्मों को दिखलाया गया।

इन पाँच दिनों में युवाओं के बीच खड़ी औपचारिकता

और अलगाव की दीवार काफी हद तक गिर गई और लोग एक-दूसरे के करीब आए और एक-दूसरे को बेहतर ढंग से समझने लगे। आखिरी दिन सभी कार्यकर्ताओं ने आने वाले छः माह के कार्यों की योजना बनाई और छठे दिन सुबह सभी कार्यकर्ता अपने-अपने कार्यक्षेत्र की ओर रवाना हो गये, लेकिन नई ताज़गी और ऊर्जा के साथ।

fnYyh fo' ofo | ky; ea  
u, l = dh 'kə#vkr ij  
fn'kk dk 15&fnoI h;  
l gk; rk Mld

दिल्ली विश्वविद्यालय के नये सत्र में दाखिले की शुरुआत के साथ ही अपनी परम्परा का निर्वाह करते हुए दिशा छात्र संगठन की दिल्ली विश्वविद्यालय इकाई ने कैम्पस के नवागंतुकों के लिए सहायता डेस्क का आयोजन किया। दिशा पिछले तीन वर्षों से यह सहायता डेस्क लगा रहा है और उसका सहायता डेस्क सबसे विशाल और लोकप्रिय माना जाता है। इस सहायता डेस्क पर पोस्टर प्रदर्शनी का आयोजन होता है और यह एक सांस्कृतिक केन्द्र के समान होता है। आर्ट्स फैकल्टी, नॉर्थ कैम्पस में 1 जून से 15 जून तक यह सहायता डेस्क लगा रहा। इसमें हजारों की संख्या में छात्र मदद के लिए आए और दिशा के वालंटियरों ने फॉर्म भरने सम्बन्धी दिक्कतों और दाखिले सम्बन्धी भ्रमों और नाजानकारियों को कुशलता के साथ दूर किया और छात्रों की मदद की। इसके साथ ही दिशा ने छात्रों को एक सहायता नम्बर भी दिया जिस पर फोन करके दाखिले सम्बन्धी सभी जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती थीं।

दिशा छात्र संगठन के शिवार्थ ने बताया कि दिल्ली विश्वविद्यालय में पिछली बार से 7 हजार सीटें तो बढ़ी हैं लेकिन इसका मुख्य कारण कई नये पाठ्यक्रमों का खुलना भी है। इसलिए यह बढ़ोत्तरी निरपेक्ष बढ़ोत्तरी नहीं है। दूसरी ओर, जहाँ पिछले वर्ष 42,000 सीटों के लिए 93,000 आवेदन आए थे, वहीं इस बार 49,000 सीटों के लिए 1,30,000 से भी अधिक आवेदन आए हैं। ऐसे में स्पष्ट है कि छात्रों के लिए अवसर घटते जा रहे हैं। दूसरी ओर, शिक्षा को माल बनाने की यह हद है कि कई पाठ्यक्रमों की फीस 12 से 15 हजार रुपये प्रति वर्ष तक जा पहुँची है। यानी, जनता के एक हिस्से को तो आर्थिक तौर पर शिक्षा के अधिकार से वंचित किया जा रहा है। शिवार्थ ने बताया कि दिशा इस व्यापारीकरण के खिलाफ लड़ती रही है और आगे भी लड़ती रहेगी।

L=h e fDr yhx }kj k  
L=h fnoI ij tuI Hkk  
dk vk; kst u

स्त्री मुक्ति लीग ने दिल्ली के दिलशाद गार्डन इलाके में अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) के शताब्दी वर्ष की शुरुआत के उपलक्ष्य में एक जनसभा का आयोजन किया। यह जनसभा जी.टी.बी. अस्पताल के रिहायशी परिसर के भीतर आयोजित की गई। इसमें एक स्त्री मुक्ति के प्रश्न पर एक पोस्टर प्रदर्शनी, पुस्तक प्रदर्शनी और गीत संध्या का आयोजन किया गया। इस मौके पर स्त्री मुक्ति लीग की सांस्कृतिक टोली ने कई क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की। इस मौके पर स्त्री मुक्ति लीग से शिवानी ने बात रखते हुए कहा कि स्त्री मुक्ति दिवस के सौ वर्षों का इतिहास बताता है कि स्त्री मुक्ति की वास्तविक लड़ाई हमेशा मेहनतकश स्त्रियों ने लड़ी है। दरअसल, अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस की शुरुआत ही स्त्री मजदूरों की लड़ाई से हुई थी। आज भी जो स्त्री सबसे अधिक कुचली जा रही है वह है मेहनत-मशक्कत करने वाली स्त्री। स्त्रियों की कुल आबादी का 80 फीसदी आम मेहनतकश वर्गों से ही आता है। इस पूरी आबादी को जहाँ एक ओर पूँजीवादी शोषण का सामना करना पड़ता है तो वहीं घर के भीतर उसे पितृसत्ता की गुलामी को भी सहना पड़ता है। आज स्त्रियों की मुक्ति के लिए स्त्री आन्दोलन को एक ओर तो मेहनतकशों की मुक्ति के आन्दोलन से जोड़ना होगा तो वहीं दूसरी ओर मजदूर आबादी में स्त्री-पुरुष बराबरी को स्थापित करने के लिए व्यापक पैमाने पर प्रचार-प्रसार और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना होगा। पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ घर के भीतर से संघर्ष शुरू करना होगा और उसे सड़कों तक लाना होगा।

इस मौके पर स्त्री मुक्ति के प्रश्न पर नेहा और श्वेता ने कविता पाठ किया। नौजवान भारत सभा की ओर से अभिनव और विवेक ने भी बात रखी। अभिनव ने कहा कि दिल्ली के पैमाने पर ही स्त्री मजदूरों ने बड़े पैमाने पर संघर्ष किये हैं। हाल ही में हुआ नर्सों का आन्दोलन इसका एक गवाह है। अस्पतालों में कर्मचारियों का जो आन्दोलन चल रहा है उसमें भी स्त्री-कर्मियों ने जमकर शिरकत की है। इसी सिलसिले को आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। महँगाई हो या बेरोज़गारी, बच्चों की शिक्षा का महँगा होना हो या चिकित्सा का महँगा होना, इन सबकी सबसे पहले मार महिलाओं पर ही पड़ती है। इन सबके खिलाफ इसीलिए सबसे पहले खड़ा भी स्त्रियों को ही होना होगा। इन सभी संघर्षों को अलग-अलग नहीं बल्कि तालमेल करके चलाना होगा। आर्थिक-राजनीतिक मुक्ति अपने आप सामाजिक मुक्ति को नहीं ला सकती लेकिन आर्थिक-राजनीतिक मुक्ति के बिना सामाजिक मुक्ति एक दिवा-स्वप्न है। इसलिए आज औरतों को सबसे पहले अपनी आर्थिक-राजनीतिक मुक्ति के बारे में सोचना होगा।

'kghn&vkte HkxrfI g]  
I d[knɔ vkʃ jkt xq ds  
78oa'kgknr fnol ij  
ukʃkkI o fn'kk dk  
nk&fnol h; dk; Øe

nʃ k dsfofHkUu fgLI kaea  
ppko dk Hk.MkQkM+  
vfHk; ku

भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के 78वें शहादत दिवस (23 मार्च, 2009) के अवसर पर नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने दिल्ली के दिलशाद गार्डन और करावलनगर इलाकों में व्यापक पैमाने पर कार्यक्रमों का आयोजन किया। 22 मार्च की शाम को जी.टी.बी. अस्पताल के कैम्पस के भीतर एक पोस्टर प्रदर्शनी, म्यूज़िक कंसर्ट और पर्चा वितरण का आयोजन किया गया। इसमें भगतसिंह और साथी क्रान्तिकारियों के जीवन पर एक विशाल पोस्टर प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इसके अलावा घर-घर जाकर लोगों को प्रदर्शनी देखने के लिए आमन्त्रित किया गया। लोगों की भीड़ आने पर म्यूज़िक कंसर्ट का भी आयोजन किया गया जिसमें क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गई।

अगले दिन शाम को नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने करावलनगर में करीब 100 लोगों का एक मशाल जुलूस निकाला जिसमें बड़ी संख्या में मज़दूर और नौजवान शामिल हुए। यह जुलूस मुकुन्द विहार में नौजवान भारत सभा के कार्यालय से शुरू हुआ और करावलनगर के विभिन्न इलाकों, जैसे अंकुर इंक्लेव, शहीद भगतसिंह कालोनी, प्रकाश विहार, करावलनगर चौक, सोम बाज़ार, मुखिया मार्केट से होता हुआ वापस नौभास कार्यालय पर ही एक जनसभा के साथ समाप्त हुआ।

गोरखपुर में भी नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने 23 मार्च के मौके पर एक जुलूस का आयोजन किया। इस जुलूस को रास्ते में प्रशासन ने रोकने की कोशिश की। लेकिन नौजवान भगतसिंह और उनके साथियों की याद में इस जुलूस को मुकाम तक पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध थे। अंततः पुलिस के आला अधिकारी वहाँ पहुँचे और उन्हें झुकना पड़ा। इस जुलूस में करीब 100 नौजवानों ने हिस्सा लिया और यह शहर के विभिन्न हिस्सों से होकर गुज़रा।

लखनऊ में जनचेतना के हज़रतगंज स्थित स्टॉल पर नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने पोस्टर प्रदर्शनी का आयोजन किया और साथ ही पर्चा वितरण भी किया। यहाँ जनराय दर्ज़ करने के लिए एक बोर्ड भी लगाया जिसमें लोगों ने अपनी प्रतिक्रिया बड़े पैमाने पर दर्ज़ की और नौभास और दिशा के इस प्रयास की सराहना की।

15वें लोकसभा चुनावों के मौके पर विभिन्न क्रान्तिकारी जनसंगठनों और पत्र-पत्रिकाओं ने पूँजीवादी चुनावी जनतन्त्र की असलियत बयान करते हुए जनता के विभिन्न हिस्सों के बीच प्रचार अभियान चलाया।

दिल्ली में नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने शहर के विभिन्न हिस्सों में पूँजीवादी चुनावों का भण्डाफोड़ करते हुए एक सघन और व्यापक अभियान चलाया। इस अभियान को दिल्ली के करावलनगर, दिलशाद गार्डन, झिलमिल औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं आस-पास के रिहायशी क्षेत्रों, बादली औद्योगिक क्षेत्र, नरेला, बवाना, शाहबाद डेरी, तिमारापुर, आज़ादपुर आदि जैसे इलाकों में चलाया गया। इसके तहत सभी नुक्कड़-चौराहों पर जनसभाएँ की गईं और साथ ही घर-घर जाकर लोगों को इस जनतन्त्र की असलियत बयान की गई। इसके तहत एक पर्चा निकाला गया जिसमें साफ तौर पर यह आह्वान किया गया था कि चुनावी पूँजीवादी जनतन्त्र की असलियत को पिछले 60 वर्षों का इतिहास बखूबी बयान कर रहा है। पिछले 60 वर्षों का इतिहास इस बात का गवाह है कि जनता की अकूत कुर्बानियों के बाद हासिल हुई आज़ादी में जनता को सिर्फ़ जूठन-झाजन ही नसीब हुई। सारी मलाई आज तक इस देश का नवधनाढ्य तबका और पूँजीपति वर्ग नेताशाही और नौकरशाही के साथ मिलकर सरपेट रहे हैं। आम मेहनतकश जनता को अपना जनवाद स्थापित करना होगा जो एक मज़दूर इंकलाब के जरिये ही हो सकता है। ऐसा मज़दूर इंकलाब एक इंकलाबी विचारधारा और इंकलाबी पार्टी के बिना सम्भव नहीं है। आज आम घरों से आने वाले नौजवानों और मज़दूरों के सामने यही सबसे बड़ा और फौरी काम है कि वे इंकलाबी विचारधारा के प्रचार-प्रसार में जुट जाएँ और साथ ही इंकलाबी पार्टी खड़ा करने के काम को युद्ध-स्तर पर शुरू कर दें। इसके अतिरिक्त, इस नर्क जैसी हालत से निकलने का और कोई रास्ता नहीं है।

यही अभियान पंजाब में इंकलाबी छात्रों-नौजवानों की पत्रिका 'ललकार' और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों की पत्रिका 'प्रतिबद्ध' ने बिगुल मज़दूर दस्ता के साथ मिलकर चलाया। इसके तहत, लुधियाना, जालंधर, चण्डीगढ़, मानसा, भटिण्डा, जैसे इलाकों में चुनावी भण्डाफोड़ अभियान चलाया गया।

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, लखनऊ, गाज़ियाबाद और नोएडा शहरों में भी चुनावी भण्डाफोड़ अभियान चलाया। यह अभियान नौजवान भारत सभा, बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन और स्त्री मुक्ति लीग ने मिलकर चलाया। इसके तहत विभिन्न रिहायशी इलाकों, मज़दूर क्षेत्रों आदि में पर्चा वितरण, जनसभाओं और पोस्टर प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

# y [ kfoUnj d h rhu d fork, i

(1)

मकसद का चुनाव  
कुछ भी कहने का कहा  
तो क्या कहा,  
कुछ भी पढ़ने को पढ़ा  
तो क्या पढ़ा,  
कुछ भी लिखने को लिखा  
तो क्या लिखा,  
कुछ भी करने को किया  
तो क्या किया?

आओ चुनें  
दुनिया बदलने का मकसद,  
और इस खातिर  
कुछ कहें।  
कुछ पढ़ें।  
कुछ लिखें।  
कुछ करें।

(2)

हमें भी होना है  
पर्वत की तरह—  
ऊँचा है  
छूता है आकाश  
लेकिन  
जमीन नहीं छोड़ी है।

हमें उठना है  
बादल की तरह  
और बरसना है,  
बीजों को देनी है नमी  
नये जीवन में  
अपना भी कुछ हिस्सा देना है।

(3)

**हम सीख लेंगे**

हम सीख लेंगे  
जीवन जीने का ढंग  
सबके सो जाने पर भी  
जागना हमेशा  
जीवन से भागकर जीने की  
इच्छाओं के आगे दीवार बनना,  
जनता के लिए जीना  
और मरना,  
उसका अपना बनना।

हम सीख लेंगे  
बदलाव के नियम,  
सतह को भेदना  
गहराइयों में उतरना  
मायूसियों से निकलना  
कामयाबियों में सम्भलना,  
'दुनिया बदलते हुए  
खुद को बदलना'।

हम सीख लेंगे  
वो सबकुछ  
जो ज़रूरी है  
और जो सीखा जा सकता है  
ताकि जान लें सभी  
यह दृढ़ता तर्कसंगत है,  
कि हमारी 'उम्मीद  
महज एक भावना नहीं है'।

हम सीख लेंगे  
मौलिकता की अति से दूर रहना,  
करना  
अध्ययन, संघर्ष और सृजन।

ek; k dk Mukuh vkj  
t; nhi i Vsy dh fxj rkrkj  
vkj xqt jkr uj l gkj  
i hfM fka dks bd kQ!

● विवेक, दिल्ली

गुजरात सरकार की माननीय मंत्री माया कोडनानी और विहिप के सम्मानित नेता जयदीप पटेल की गिरफ्तारी ने गुजरात में 2002 में हिटलरी अवतार मोदी के नेतृत्व में हुए सुनियोजित कत्लेआम में कोई नया अध्याय नहीं जोड़ा है। बल्कि सच का बहुत छोटा-सा हिस्सा सामने आया है जिसमें कितने ही माया कोडनानी और जयदीप पटेल मोदी की छत्र-छाया में पल रहे हैं, और सिर्फ पल ही नहीं रहे बल्कि तमाम मंत्रालय और उपाधियों से भी सुशोभित हैं। जिस तरह से जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद जनरल डायर को जुल्मी अंग्रेज सरकार ने सम्मानित करने का काम किया था उसी तरह से मोदी ने भी चुन-चुनकर गुजरात कत्लेआम में शामिल लोगों को सम्मानित करने का काम किया। लेकिन जनरल डायर जैसे हत्यारों का क्या अंजाम हुआ, वो तो जगजाहिर हैं। लेकिन इसके साथ कुछ ऐसे सवाल भी हैं जिसपर बात किये बिना इस मामले को समझा नहीं जा सकता।

पहला सवाल, क्या ये गिरफ्तारी न्यायपालिका की जीत है? यह सही है कि गुजरात कत्लेआम में राज्य पुलिस के भेदभावपूर्ण रवैया को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट के द्वारा बारह बड़े मामलों में जाँच के लिए विशेष जाँच दल गठित करने का निर्देश दिया था, जिसमें नरोदा पाटिया और नरोदा गाम जनसंहार मामले में माया कोडनानी और जयदीप पटेल की गिरफ्तारी हुई। इसका श्रेय न्यायपालिका को दिया जा सकता है। लेकिन उसके साथ ही एक बड़ा सवाल यह भी है कि उन ग्यारह बड़े मामलों का क्या हुआ? सात साल की अवधि कम नहीं होती। इसलिए न्यायपालिका इन फासीवादी ताकतों का जवाब नहीं हो सकती। पूँजीवादी जनतंत्र की यह मजबूरी होती है कि कुछ ऐसे गिने-चुने मामलों को पेश कर जनता का न्यायपालिका में विश्वास बनाये रखे, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था को बचाये रखने की सबसे आखिरी कड़ी न्यायपालिका ही होती है। अगर लोगों का न्यायपालिका में से विश्वास उठ गया तो पूँजीवादी व्यवस्था की आखिरी सुरक्षा कड़ी भी ढह जायेगी। इसलिए कुछेक माया कोडनानी और जयदीप पटेल जैसे लोगों की बलि देना पूँजीवादी व्यवस्था के भ्रम को बचाए रखने की कीमत है।

दूसरा बड़ा सवाल कि क्या माया कोडनानी और जयदीप पटेल की गिरफ्तारी गुजरात कत्लेआम में पीड़ितों के लिए इंसाफ है? कतई नहीं! गुजरात नरसंहार में दरिन्दगी की जिस हदों तक फासिस्ट हत्यारे गये, उनकी मिसाल हिटलर के जर्मनी में भी देखने को नहीं मिलती है। उसके बारे में बार-बार विस्तार से लिखना भी

कहीं न कहीं हमारी संवेदनाओं की धार को भोथरा बनाता है, इसलिए हम यहाँ वहशियत की उन मिसालों के बारे में नहीं लिख रहे हैं। तहलका द्वारा किये गये भण्डाफोड़ में वह सच सारी दुनिया के सामने आ चुका है। इस दरिन्दगी के खिलाफ पीड़ितों को मोदी के किसी एक चहेते को मिल जाने वाली सजा से इंसाफ नहीं मिलने वाला। इसका इंसाफ सिर्फ एक है। मोदी जैसे हत्यारों और उसकी पूरी ब्रिगेड के खिलाफ किसी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय में मानवता के खिलाफ अपराध का मुकदमा चलाया जाना चाहिए और इन हत्यारों को ऐसी सजा मिलनी चाहिए जो आने वाले समय के लिए एक मिसाल हो। इसका इंसाफ यही हो सकता है कि इंकलाबी ताकतें फासीवादी भगवा गिरोह जैसी ताकतों को समाज में ज़हर के बीज न बोने दे जिसके ज़हरीले पौधों के तौर पर हमें इस किस्म के नरसंहारों का गवाह बनना पड़ता है जो आने वाली कई पीढ़ी तक हर संवेदनशील शख्स की अंतश्चेतना को झकझोरते रहते हैं।

एक बात और। अभी इन कथित राष्ट्रभक्तों (संघ परिवार) के बीच से मुम्बई आतंकवादी हमले में पकड़े गये कसाब को सरेआम गेट वे ऑफ इण्डिया पर फाँसी देने की बात की जा रही थी। तो क्या माया कोडनानी और जयदीप पटेल समेत हर उस दरिंदे को भी खुलेआम फाँसी नहीं दी जानी चाहिए जो गुजरात कत्लेआम में शामिल था? इन कातिलों ने तो बहुत ही सुनयोजित और संगठित तरीके से मुस्लिम आबादी का कत्लेआम किया था। इन कातिलों के पास कम्प्यूटर से निकाले हुए दस्तावेज थे जिनमें मुस्लिम परिवारों एवं उनकी परिसम्पत्तियों का विवरण दर्ज था। गोधरा काण्ड के दो हफ्ते पहले से ही एल.पी.जी. की आपूर्ति कम पड़ने लगी थी क्योंकि सिलेण्डर इकट्ठा किया जा रहे थे। ये दंगाई एक वहशी गिरोह के रूप में काम कर रहे थे। जहाँ मुस्लिम बस्तियाँ थी वहाँ इन दंगाइयों के एक के बाद एक ट्रक आते जिसमें से कितने ही दंगाई उतरते इनके हाथों में देशी हथियार, छुरे व त्रिशूल थे। इन गिरोहों का नेतृत्व कर रहे लोग मोबाइल फोन से अपने नियंत्रण केन्द्र से सम्पर्क भी स्थापित करते थे। कुल मिलाकर दंगाइयों की सेना इतनी साधनसम्पन्न थी, इतनी जल्दी गोलबन्द हुई, इसके निशाने इतने सटीक और कार्यवाही के तरीके इतने प्रशिक्षित थे कि यह सब लम्बी तैयारी के बिना मुमकिन ही नहीं था। इस कत्लेआम में पूरी सरकारी मशीनरी ही शामिल थी। तो क्या पूरी की पूरी सरकारी मशीनरी को मोदी समेत गेट वे ऑफ इण्डिया पर नहीं लटका देना चाहिए?

लेकिन सिर्फ इससे गुजरात नरसंहार पीड़ितों को इंसाफ नहीं मिल सकता। क्योंकि सवाल सिर्फ गुजरात कत्लेआम का ही नहीं बल्कि उस विचारधारा का है जिसने गुजरात कत्लेआम अंजाम दिया। और ये भारतीय फासीवादी विचारधारा है, और इसके कार्यवाहक बने हुए हैं संघ, विहिप, बजरंगदल, शिवसेना। ये सिर्फ गुजरात में ही नहीं बल्कि भारत में हर जगह सक्रिय है। और जब इसे मौका मिलता है तो अपने खूनी पंजों से मेहनतकश आबादी के चेहरे को लहुलुहान कर देते हैं। इसलिए अगर हम यह नहीं जानेंगे कि फासीवाद को खाद-पानी कहाँ से मिलता है, तो कभी गुजरात तो कभी कंधमाल जैसे काण्ड होते रहेंगे। फासीवाद अगर हमेशा से किसी की सबसे बड़ी जरूरत रही है तो वह बुर्जुआ वर्ग की। लेकिन बुर्जुआ वर्ग फासीवाद को लेकर हमेशा द्रष्ट का शिकार

होता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में लगातार जारी आर्थिक संकट के चलते पूँजीवादी व्यवस्था को हमेशा यह डर बना रहता है कि मेहनतकश आबादी अपने हक-अधिकारों के लिए अपने को संगठित न कर ले। इसलिए ऐसी फासीवादी ताकतों को खुराक देने का काम भी ये पूँजीपति ही करते हैं। जर्मनी में हिटलर के फासिस्ट गिरोहों के पीछे उद्योग जगत के बड़े सरदार यँ ही नहीं खड़े थे। वरना क्या कारण था कि गुजरात कल्लेआम के समय गुजरात के हीरा उद्योग, होटल उद्योग में 200 करोड़ रुपये और कपड़ा और वस्त्र उद्योग में 300 करोड़ रुपये के नुकसान के बावजूद भारतीय बड़े उद्योगपति खामोश रहे। इसलिए फासीवाद बर्जुआ वर्ग का वो कटखना पालतू कुत्ता होता है जिसकी जंजीर अगर खुल जाती है तो वो मेहनतकश आबादी को तो काटता ही है साथ वो बर्जुआ वर्ग का भी पालतू नहीं रहता, और उस पर भी गुराँता या काट लेता है।

इसलिए पीड़ितों को इंसाफ तब तक नहीं मिल सकता है जब तक ऐसी फासीवादी ताकतों को जवाब नहीं दिया जाता। और ये जवाब किसी न्यायपालिका के न्याय की आस में या मोमबत्ती जलाकर नपुंसक विरोध प्रदर्शन से या चुनावी वामपंथियों की तरह संसद में 'साम्प्रदायिक शक्तियों का विरोध' करो नामक तीर छोड़ने से नहीं दिया जा सकता। इतिहास गवाह है कि ऐसी फासीवादी ताकतों को जवाब सिर्फ क्रान्तिकारी मेहनतकश मजदूर आबादी की संगठित ताकत ने ही दिया है जैसे यूरोप के देशों में, रूस में या चीन में क्रान्तिकारी ताकतों ने दिया।

## i pt hokn dk <dk> yk vkj MkfoL dk fl )kUr

### ● कुणाल, दिल्ली

12 फरवरी 2009 को चार्ल्स डार्विन के जन्म के 200 साल पूरे हुए। इसी साल नवम्बर में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' के प्रकाशन को भी 150 साल हो जायेंगे।

डार्विन ने प्रकृति में विविधिकरण को सामान्य वंशावली (कॉमन डिसेन्ट) से क्रमिक विकास (एवोल्यूशन) की वैज्ञानिक व्याख्या की स्थापना की। जानवरों व पौधों की प्रजातियों के असम्बद्ध, 'ईश्वर द्वारा पैदा की गई' या अपरिवर्तनीय होने को खारिज करते हुए प्रजातियों के एक लम्बी प्राकृतिक प्रक्रिया के दौरान निरन्तर परिवर्तन और अनुक्रमण से उत्पन्न होने की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की। डार्विन ने आज से 150 साल पहले ही 'ईश्वर द्वारा जीवन की उत्पत्ति के विचार के ऊपर अनुत्तरित प्रश्न-चिन्ह खड़ा कर दिया था। लेकिन आज भी अमेरिका व यूरोप में डार्विनवाद को खण्डित करने के प्रयास जारी हैं। अमेरिका के सार्वजनिक स्कूलों के पाठ्यक्रमों से 'थ्योरी ऑफ एवोल्यूशन' की जगह 'बुक ऑफ जेनेसिस' (बाइबल का पहला खंड) को दी जा रही है। पिछले कुछ सालों से धार्मिक संस्थाओं से सम्बद्ध स्कूलों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई है। अमेरिका में फैले विभिन्न सृष्टिवादी संगठन, बच्चों की शिक्षा का खर्चा स्वयं उठा कर, इन गैर-सरकारी स्कूलों में दाखिला करवा रहे

हैं। इस स्कूलों में सिर्फ डार्विनवाद को खारिज कर सृष्टिवाद के आधार पर शिक्षा दी जाती है। बचपन से बाइबल के अक्षरों के साथ ईसाई होने की 'श्रेष्ठता' का भी बोध करवाया जाता है। अन्य सभी धर्मों को गलत बताते हुए यह धार्मिक कट्टरपंथ की ज़मीन तैयार करने के प्रचार केन्द्र भी बन जाते हैं। अमेरिका की कट्टरपंथी राजनीतिक ताकतें, चर्चों के एक व्यापक संरचनात्मक ढाँचे के साथ मिल के सार्वजनिक व गैर-सरकारी शिक्षा में डार्विनवाद को हटा कर सृष्टिवाद व बाइबल को लागू करवाने की एक प्रभावी 'पावर मशीन' बन गई है। साथ ही इनका जोर सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को खत्म कर प्राइवेट स्पान्सरशिप से चलने वाले स्कूलों को खड़ा करने पर भी है।

ब्रिटेन में सन 2000 तक, सरकारी स्कूलों में डार्विन को पढ़ाया जाता था। लेकिन 2000 से, प्राइवेट स्पान्सरशिप द्वारा चलाये जाने वाले सरकारी स्कूलों को भी शुरू कर दिया गया। इसका सीधा नतीजा यह निकला है कि अब इंग्लैंड के बड़े-बड़े धन कुबेर प्राइवेट स्पान्सरशिप देकर पाठ्यक्रम से डार्विन को हटा कर बाइबल व 'इंटेलिजेण्ट डिज़ाइन' लगवा रहे हैं। सृष्टिवाद व धार्मिक ग्रंथों को कक्षाओं में लाने के प्रयास यूरोप के अन्य देशों में भी जारी हैं।

विश्व के सबसे 'उन्नत' देशों में विज्ञान को इतने खुले रूप में खारिज होते सुन हमें आश्चर्य जरूर हो सकता है। यह तथ्य विचार योग्य है कि जिन देशों में दुनिया के सबसे आधुनिक शोध संस्थान व सबसे बेहतरीन विश्वविद्यालय हों वहाँ विज्ञान द्वारा 150 साल पहले ही खण्डित की जा चुकी शिक्षाओं व विचारों को पुनः स्थापित करने के प्रयास क्यों बढ़ रहे हैं? अगर हम धार्मिक शिक्षाओं, सृष्टिवाद या 'इंटेलिजेण्ट डिज़ाइन' जैसे विचारों के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की पड़ताल करें तो उत्तर मिल सकता है। आज सृष्टिवादी व धार्मिक कट्टरपंथी किसी भी वैज्ञानिक तथ्य के जरिए डार्विनवाद को चुनौती नहीं दे सकते। इसलिए यह लोगों की भावनाओं को निशाना बनाते हुए अविश्वास पैदा करने वाले तर्कों को पेश करते हैं। इनका मानना है कि—'क्रमिक विकास का मतलब है योग्यतम की उत्तरजीविता'। इस सिद्धांत को समाज पर लागू कर, पूँजीवादी जनतंत्र के आधार के रूप में पेश किया जाता है। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि सब लोगों को प्रतियोगिता के समान अवसर उपलब्ध हैं। जो सबसे योग्य है, वह जीत कर आगे निकल जायेगा बाकी जो योग्यतम नहीं है उनकी समाज में कोई जगह नहीं है। यह तर्क भी दिया जाता है कि प्रकृति मानव समाज का एक सीमा तक ही बोझ उठा सकती है। इसलिए आबादी के एक हिस्से का समय-समय पर प्राकृतिक विपत्तियों, कुपोषण, गरीबी से सफाया हो जाना आवश्यक है। जो योग्य है वह जियेगा बाकी चाहे मरें या घुट-घुट कर जिएँ। इसे सामाजिक डार्विनवाद भी कहते हैं। यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का चारित्रिक गुण ही है, कि यह सिर्फ मुट्ठी भर आबादी को ही जीने की बुनियादी जरूरतें मुहैया कराती है—रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, रोज़गार सिर्फ मुट्ठी भर आबादी को। यानी पूँजीवाद स्वयं ही सिर्फ एक छोटी सी आबादी को जीने के योग्य छोड़ता है और फिर डार्विनवाद की गलत व्याख्या कर अपना औचित्य साबित करने की कोशिश भी करता है।

दूसरी ओर धार्मिक कट्टरपंथी व नस्लवादी ताकतें भी 'सामाजिक डार्विनवाद' का प्रयोग कर 'श्रेष्ठतम' और 'योग्यतम' का प्रचार कर लोगों के बीच नफरत पैदा करने का काम करतीं

है।

लेकिन योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धांत अलग-अलग प्रजातियों के बीच लागू होता है न कि एक ही प्रजाति के सदस्यों के बीच। डार्विन के अनुसार किसी भी प्रजाति की उत्तरजीविता व विकास के लिए उसके सदस्यों के बीच आपसी निर्भरता व सहयोग की आवश्यकता होती है। इसलिए योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धान्त मानव समाज के ऊपर लागू नहीं किया जा सकता।

सृष्टिवाद कई रूप में व्यवस्था की सेवा करता है। एक तरफ तो यह विभिन्न धर्मों, नस्लों, जातियों के लोगों को आपस में लड़ा कर बुनियादी सामाजिक समस्याओं से ध्यान भटकाने में मदद करता है। दूसरी तरफ यह सारे वैज्ञानिक तथ्यों को खारिज कर ईश्वर के अस्तित्व का प्रचार करता है। इसके अनुसार मानव समाज को, जीवन की रोजमर्रा की गतिविधियों और समस्त प्राकृतिक व सामाजिक परिघटनाओं को ईश्वर नियंत्रित करता है। आम आबादी इसका यह अर्थ निकालती है कि उसकी सारी समस्याओं का हल भी इसी सर्वशक्तिमान ईश्वर के पास है। नतीजतन एक व्यापक आबादी भ्रमित होकर ईश्वर से झूठी उम्मीद लगाये जीती रहती है। यह आबादी ईश्वर और परमात्मा के मायाजाल से बाहर आकर कभी अपने जीवन की स्थितियों को पूरे समाज की समस्याओं से जोड़ते हुए उनका हल निकालने के बारे में सोच तक नहीं पाती है। ऐसे में सृष्टिवाद को बढ़ावा मिलता है। किस्मत का रोना रोने, 'हमेशा से ही शोषण चलता आ रहा है', 'ऊपर वाला सब ठीक कर देगा' में जनता में पूँजीवाद की स्वीकृति का भाव अन्तर्निहित होता है। डार्विनवाद को खारिज करने का एक और बड़ा कारण यह है कि डार्विनवाद मानव समाज को ईश्वर द्वारा पैदा किये जाने और नियंत्रित होने को नकार देता है। इसका यह अर्थ निकलता है कि मानव समाज के अपने गति के नियम होते हैं, जिनके जरिये यह निरन्तर बदलता हुआ आगे बढ़ता रहता है। यानी यह समाज पूँजीवाद पर ही ठहरेगा नहीं, यह यहाँ से आगे भी जायेगा। यह विचार पूँजीवाद के अस्तित्व के लिए खतरनाक है, क्योंकि यह शिक्षित आम आबादी के बीच इस समाज को बदलने की उम्मीद को पैदा कर देगा।

आज जब पूँजीवाद अपनी विलम्बित आयु जी रहा है, मानव सभ्यता को नया देने के लिए इसके पास कुछ भी नहीं बचा है तो यह अपनी आयु को थोड़ा ओर खींचने के सारे सम्भव प्रयास कर रहा है। यह बीमार बूढ़ा पूँजीवाद अब अतीत की ओर देख रहा है। शिक्षा-प्रणाली में हेर-फेर कर आज यह आम आबादी को विज्ञान से दूर तो रख सकता है लेकिन अपनी जीवन स्थिति से सीखते हुए पूँजी की बर्बर लूट और जीवन के बदतर होते हालातों के चलते यह इस आबादी को वैकल्पिक समाज बनाने के विज्ञान से दूर नहीं रख सकता है।

# Hkxok fcxM dk Qjeku o#.k xkèkh dh tçku

## ● शाम, दिल्ली

दुनिया के हर प्रजाति के फासीवादियों की तरह हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादियों की प्रचार-रणनीति भी सफेद झूठ पर टिकी है। हिटलर के कुख्यात प्रचार मन्त्री गोयबल्स की प्रचार शैली का तो सूत्रवाक्य ही था कि एक झूठ को सौ बार दुहराओ तो वह सच में बदल जाता है। लेकिन 'स्वदेशी' फासीवादियों ने तो इस गोयबल्सवादी प्रचारशैली को भी मात दे दी है। इन सफेद झूठों की सूची को और लम्बा करने काम वरुण गांधी ने किया है और अपनी बात को सही साबत करने के लिए अपने पक्ष में कहा कि मैं एक ऐसे माहौल में बोल रहा हूँ जब हिन्दू दबा हुआ महसूस कर रहे थे और मुझे उनमें 'हिम्मत' भरनी है। कई हिन्दू लड़कियों का बलात्कार किया गया था। वहाँ क्या मैं एक नर्म भाषण देता? जिसमें यह बात अन्तर्निहित है कि हिन्दू लड़कियों का बलात्कार भला हिन्दू थोड़े ही करेंगे! 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने इसमें अपनी रिपोर्ट छपी कि कई नहीं, तीन बलात्कारों की सूचना थी और सबमें जो अपराधी नामजद थे, वे हिन्दू ही थे। 2002 के गुजरात के अखबारों में खबर छपी कि हिन्दू औरतों के क्षत-विक्षत शरीर पाए गए हैं। ऐसी सारी खबरें गलत पाई गईं, लेकिन किसी ने इसके लिए माफी नहीं माँगी। इसी तकनीक का इस्तेमाल वरुण गाँधी ने किया जो संघ परिवार की बार-बार अपनाई गई तकनीक है।

एक और बात भी देखी जा सकती है किस तरह चुनावी नौटंकी का खेल खेला जाता है। चुनावों में आडवाणी अपने आपको सीधे-सीधे किसी ऐसे मुस्लिम-विरोधी बयान से बचाते रहे ताकि कुछ मुस्लिम वोट जुटाया जा सके। भाजपा यह काम गुजरात दंगों की वजह से नरेन्द्र मोदी के मुँह से भी नहीं कहलवाना चाहती थी। अब वरुण गांधी जैसा एक ऐसा मोहरा हाथ में आया जिसका इस्तेमाल 'एक तीर दो निशाने' की तरह किया। एक तरफ उसने अपने हिदुत्व के एजेन्डे वाले आधार को विश्वास दिलवा दिया कि अभी भी उसका हिदुत्व का एजेन्डा कायम है। दूसरा, कांग्रेस पार्टी में नेहरु-गाँधी परिवार के किसी सदस्य से यह बात कहलवाकर मीडिया का इस्तेमाल भी कर लिया। ऐसा करते वक्त चुनावी माहौल को देखते हुए पहले तो भाजपा पीछे रही और वरुण गाँधी भी सी.डी. में छेड़छाड़ की बात कर रहा था। सिर्फ संघ परिवार ही आगे आया परन्तु बाद में इसका फायदा देखकर भाजपा सीधे-सीधे उसके समर्थन में आ गई और वरुण गाँधी भी इसे मानने लगा। चुनावी फायदा देखकर गिरगिट से जल्दी अपना रंग बदल लिया। यही तो है चुनावी नौटंकी का असली खेल।

वैसे दिमाग में एक सहज-सा प्रश्न आता है कि नेहरु-गाँधी परिवार के दोनों हाथ में तिरंगे झण्डे की जगह उसके वंशज द्वारा एक हाथ में भगवा झण्डा पकड़ने जाने और अब पीलीभीत में खुलकर मुसलमानों के खिलाफ वरुण गाँधी के बयान पर इतनी चर्चा और आश्चर्य क्यों? क्योंकि नर्म साम्प्रदायिक हिन्दू कार्ड का इस्तेमाल करने के कांग्रेस पार्टी का हुनर तो उसने अपने गाँधी परिवार से ही सीखा था। आपातकाल के समय व्यावहारिक तौर पर

सरकार चलाने वाले संजय गाँधी खुद भी मुस्लिम-विरोधी था। दिल्ली में तुर्कमान गेट पर बसी बस्ती पर बुलडोजर उसी ने चलवाया था और वहाँ से उजाड़े गये लोगों को कहीं बाहरी जगह पर बसाया था। उसकी माँ मेनका गाँधी ने इमरजंसी के वक्त अपने पति की सभी ज़्यादतियों में साथ दिया था और बाद में तो सीधे-सीधे भाजपा (संघ परिवार) में शामिल हो गई। वहीं पर चुनाव आयोग द्वारा अपने आप को धर्मनिरपेक्ष साबित करने के लिए केवल वरुण गाँधी को दोषी ठहराकर उसकी पार्टी भाजपा को क्लीन चीट देना ही सबकुछ बतला देता है। सरकार, न्यायालय और प्रशासन का असली चेहरा भी सामने आता है कि तमाम नरसंहारों को व्यवस्थित रूप से आयोजित करने वाले नरभक्षियों को पकड़ने की (जिसको महज साम्प्रदायिक दंगा साबित करने की कोशिश की जाती है) बजाय उन्हें छुट्टा घूमने के लिए खुला छोड़ रखा है। चाहे वो गुजरात के हिटलर नरेन्द्र मोदी की सरकार हो या फिर कांग्रेस की केन्द्र सरकार हो। गुजरात उच्च न्यायालय ने चाहे निचली अदालत द्वारा माया कोडयानी (नरेंद्र मोदी मंत्रीमण्डल की सदस्य) को दी गई अग्रिम जमानत रद्द कर दी लेकिन आज तो अदालतों के चरित्र का भी सब को पता चल गया है। हाल ही में जैसे सीबीआई द्वारा कांग्रेस के जगदीश टाईटलर को क्लीन चीट (जबकि नानावटी कमीशन उसे दोषी ठहरा चुका है) दी है, उसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि सरकार, न्यायालय और प्रशासन कैसे काम करता है। अपने चहेते के बयान पर सिर्फ भाजपा, एबीवीपी, विहिप, बजरंग दल, श्री राम सेना ही पीठ नहीं ठोक रहा बल्कि बधाई देने वालों में संघ प्रमुख, कांची के शंकराचार्य, श्री-श्री रविशंकर, मोरारी बापू और अंबानी बंधू सहित कई उद्योगपति शामिल थे। उसे अपने मोबाइल फोन पर 10 हजार से ज्यादा एसएमएस और 800 जिलों से फैंक्स आए। करीब 37 हजार लोगों ने उसे यूट्यूब पर देखा और सुना। इसी तरह की राजनीति का मुम्बई में नुस्खा आजमाने वाले बाल-राज ठाकरे उसकी पीठ ठोक रहे हैं।

चुनावों में साबित हो गया कि इस हिन्दू कार्ड को आक्रामक ढंग से खेलकर भी भाजपा को कोई लाभ नहीं हुआ। कारण साफ है। जनता साम्प्रदायिक कार्ड से बुरी तरह ऊबी हुई है। उसके जीवन के मूल मुद्दे किसी के चुनावी घोषणापत्र में दिखलाई तक नहीं दिये। नतीजतन, सरकार और सभी चुनावी पार्टियों के लाखों प्रयासों के बावजूद वोटों पर कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा। पिछले कई चुनावों की तरह इस बार भी 55 फीसदी ही वोट पड़े। जनता सभी से ऊबी हुई है और भाजपा की मरियल बूढ़ी घोड़ी से तो

चिढ़ी हुई है। यही कारण था कि प्रधानमंत्री पद के लिए हुलस-किलस रहे लालकृष्ण आडवाणी के लाखों प्रयासों के बावजूद भाजपा चुनावों में बुरी तरह पिट गई।

भारतीय राजनीति और चुनाव में चाहे कोई चेहरा सामने आये, चाहे कैसे भी गोटी बिठाई जाए लेकिन फासीवादी उभार के वर्तमान दौर की दो बातें अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। पहली यह कि कोई भी गठबन्धन सत्ता में आए, भारतीय समाज के सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक ताने-बाने में संघ परिवार और इस तरह की अन्य फासीवादी शक्तियों की मौजूदगी बनी रहेगी, क्योंकि उदारीकरण-निजीकरण के मौजूदा जारी दौर के स्वाभाविक परिणाम के रूप में सम्भावित मेहनतकश अवाग की प्रतिरोधात्मक एकता को तोड़ने के लिए आज बड़े पूँजीपति वर्ग का बहुलांश और साम्राज्यवादी शक्तियाँ “नियंत्रित” फासीवाद की लगातार मौजूदगी की पक्षधर हैं। वे उसे जंजीर से बन्धे शिकारी कुत्ते की तरह मजदूर वर्ग और व्यापक जनता के खिलाफ लगातार तैनात रखना चाहती है। दूसरी बात, जो ओर अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि भारतीय रुग्ण और विकलांग पूँजीवादी व्यवस्था के ढाँचागत संकट का जो नया दौर शुरू हुआ था, वह आज मंदी और संकट के रूप में सामने आ चुका है जो विश्व-पूँजीवादी मंदी और संकट का ही एक अंग और प्रतिफल है। देशी-विदेशी पूँजी की “अतिलाभ” निचोड़ने की हवस और परजीवी वित्तीय पूँजी के निर्णायक, सम्पूर्ण वर्चस्व ने इन देशों की पूरी सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक अधिरचना के फासिस्टीकरण की प्रक्रिया तेज़ कर दी है। यही उसके सामने एकमात्र विकल्प है। उसने अपनी आवश्यकता और बाध्यता के रूप में निर्बन्ध बाज़ारीकरण का जो मार्ग चुना है, उसके लिए एक निरंकुश सत्ता तन्त्र अनिवार्य होगा।

इस साम्प्रदायिकता और फासीवाद का विरोध सही ढंग से करना बहुत जरूरी है। इसका विरोध मध्यवर्गीय-सुविधाभोगी-नुपुंसक धर्मनिरपेक्ष, “नेहरुवादी धर्म निरपेक्षता” या कभी-कभी पश्चिमी देशों के “बुर्जआ जनवादी विभ्रमों”, बाजार समाजवाद या सामाजिक जनवाद, भाजपा विरोधी गठजोड़ की संसद में तीसरी ताकतों के रणनीति, एनजीओ-पंथियों के नये-नये नुस्खे-फार्मूले अपनाने की बजाये शहरी मजदूर आबादी को और उसके साथ गाँव के गरीबों को और फिर गाँव-शहर के आम, परेशान मध्यवर्गों में वर्ग चेतना को जगाते हुए लामबन्द करते हुए करना होगा तथा क्रान्तिकारी जनदिशा की राजनीति प्रचार की कार्यवाही लगातार चलाना और मजदूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाना होगा।

## आह्वान यहाँ से प्राप्त करें

**उत्तर प्रदेश** ● जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर, ● जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ ● जनचेतना स्टॉल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 बजे से 8.30 तक) ● जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8) ● तपिश, येलो प्लैनेट, जी-264, संजय नगर, गाजियाबाद ● शहीद पुस्तकालय द्वारा डॉ. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ● प्रोग्रेसिव बुक स्टॉल, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ● करेंट बुक डिपो, 18/53, माल रोड, फूलबाग के सामने, कानपुर **दिल्ली** ● योगेश स्वामी, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर ● सत्यनारायण, रूम नं. 32, हिन्दू कॉलेज हॉस्टल, नॉर्थ कैम्पस, दिल्ली विश्वविद्यालय ● पी.पी.एच., जे.एन.यू. ● गीता बुक सेंटर, जे.एन.यू. ● हेम बुक सेंटर, जे.एन.यू. ● यू. स्पेशल : दि यूनिवर्सिटी बुकशॉप, नॉर्थ कैम्पस, दिल्ली विश्वविद्यालय **बिहार** ● श्री रामनारायण राय (शिक्षक), प्रोफेसर कॉलोनी, सी.एन. कॉलेज साहेबगंज, पो.-करनौल, जिला मुजफ्फरपुर ● पीपुल्स बुक हाउस, पटना कॉलेज के सामने, अशोक राजपथ, पटना, बिहार ● मैगजीन कॉर्नर, दिनकर चौक, नालारोड, पटना **राजस्थान** ● चन्द्रशेखर, लोकायत प्रकाशन, 883, लोथो की गली, एम.डी. रोड, जयपुर ● शैलेन्द्र चौहान द्वारा शिवराम सं. ‘अभिव्यक्ति’, 4/P/46, तलबण्डी, कोटा ● ओ.पी. गुर्जर, 137, गोल्फ कोर्स स्कीम, एयर फोर्स, जोधपुर **हरियाणा** ● डॉ. सुखदेव हुंदल, ग्रामपोस्ट संतनगर वाया जीवन नगर, सिरसा **महाराष्ट्र** ● सन्नी/प्रशांत, रूम नं.-31, हॉस्टल नं.-6, आई. आई.टी. मुम्बई, पवई, मुम्बई ● पीपुल्स बुक हाउस, मेहरजी हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट फोर्ट, मुम्बई **पंजाब** ● सुखविन्दर, 154, ओम बेकरी के सामने, शहीद कर्नल सिंह नगर, फेज-3, पखोवाल रोड, लुधियाना ● पंजाब बुक सेंटर, SLO-1126-27, सेक्टर - 22 बी चण्डीगढ़ **पश्चिम बंगाल** ● न्यू होराइजन बुक ट्रस्ट, 57/1, पटुआ टोला लेन, कोलकाता ● बुक मार्क, 6, बंकिमचन्द्र चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता **मध्य प्रदेश** ● संजय बुक स्टॉल, शाप नं. 43, ग्वालियर

# स्कूल चले हम, स्कूल चले हम

## urk cuud!!

### ● विवेक

जो भी इस खबर को पढ़ रहा हो उनके लिए चौंकने की कोई जरूरत नहीं है। जब एम.बी.ए., एम.सी.ए. और मेडिकल, इंजीनियरिंग की पढ़ाई हो सकती है तो नेता बनने की क्यों नहीं? नेताओं का काम सबसे महत्व का होता है! पूरे देश की जिम्मेदारी होती है! जिसे नेताओं ने आजादी के बाद से बार-बार साबित किया है। पहले नेता अनुभव से, धीरे-धीरे, हौले-हौले सब सीखते थे। लेकिन भई, अब तो नेता बनने की पढ़ाई की भी जरूरत है! इसलिए अभी हाल ही में पूर्व कांग्रेस नेता राज रंजन ने झारखंड की राजधानी राँची में नेतागिरी विद्यालय खोला है जहाँ नेता बनने के सब गुण सिखाये जाते हैं।

हमने भी सोचा भई धन्धा तो बड़ा सही है। लोकसभा चुनाव की तारीख भी तय हो गयी है इसलिए नेताओं को शिक्षित तो जरूर करना चाहिए। और ये सोचकर हम भी नेताओं का एक स्कूल खोल रहे हैं। इसमें प्रधानाचार्य रखने में तो कठिनाई हो रही है क्योंकि सबके सब अपने क्षेत्र में धुरंधर हैं और अपने को देश का अगला प्रधानमंत्री बता रहे हैं। इसलिए शिक्षकों की ही एक टीम तैयार की है जिसमें तमाम विशेषज्ञ शिक्षक होंगे। पहले शिक्षक मोदी पढ़ायेंगे कि कैसे एक प्रायोजित कल्लेआम को “क्रिया की प्रतिक्रिया” का रूप दिया जाता है। यहाँ पढ़ाई सिर्फ थ्योरेटिकल ही नहीं होगी। प्रैक्टिकल के रूप में केरल, मुम्बई, मध्यप्रदेश दिखाया जायेगा। दूसरे बड़े शिक्षक होंगे मनमोहन सिंह, इस देश के बड़े अर्थशास्त्री, जो बतायेंगे कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करने के लिए “ट्रिकल डाउन थियोरी” जैसे चमत्कारी सिद्धान्तों का जामा कैसे पहनाया जाय जो कहता है कि जब समाज के शिखरों पर समृद्धि आयेगी तो वह रिसकर नीचे गरीब तबके तक पहुँच जायेगी! अब यह तो विश्व भर की मेहनतकश जनता अपने पिछले 30 साल के भूमण्डीकरण के अनुभव से बता सकती है कि आज की व्यवस्था में समृद्धि तो ‘ट्रिकल डाउन’ करती नहीं है लेकिन संकट ‘ट्रिकल डाउन’ जरूर करता है। साथ ही मनमोहन जी मन मोह लेते हुए बताएँगे कि पूँजीपतियों को अपनी अय्याशी इस तरह खुले में पेश नहीं करनी चाहिए कि देश की मेहनतकश जनता में रोष पैदा हो। मतलब की एक अच्छा नेता वही नहीं होता जो सरकार और पार्टी जैसी चीजों के बारे में सोचे बल्कि अच्छा नेता वह होता है जो ये सोचे कि कैसे ये सड़ी पूँजीवादी व्यवस्था बची रहे।

इसके साथ ही, बात-बात पर कैसे सरकार से रूठने का नाटक किया जाये और नपुंसक विरोध प्रदर्शन किया जाये और यह सब करते हुए भी चकित कर देने वाली जादूगरी के साथ किस

तरह मजदूरों का नाम जपते हुए नन्दीग्राम, सिंगूर किया जाये इसके लिए विशेष तौर पर संसदीय वामपंथियों की पूरी टीम स्कूल में अपनी सेवा देने को तैयार है। चन्दा उगाहने का हुनर और सोशल इंजीनियरिंग के बारे में बताने के लिए मायावती आयेंगी। और फिल्मी सितारों को पार्टी में भर्ती करने(खरीदने) का हुनर श्रीमान अमर सिंह जी बतायेंगे।

बाकी कैसे बड़े-बड़े घोटाले किया जायें इसके लिए तमाम मेहमान शिक्षकों को बुलाया जायेगा। पर्सनेलिटी डेवलपमेंट का कोर्स फ्री होगा। इसके शिक्षक लालू यादव होंगे जो बतायेंगे कि कैसे ऐसा भाषण दिया जाये जिसमें लोग अपनी दुर्दशा पर ही हँसे। पर्सनेलिटी डेवलपमेंट के लिए कुछ बाहुबली नेताओं को भी बुलाया जायेगा कि कैसे अपनी पर्सनेलिटी अर्थात् साख (खौफ) के दम पर चुनाव जीता जाता है। स्पेशल कोर्स में चुनावी मुद्दों और झूठे वायदों की लिस्ट फ्री दी जायेगी जिसमें क्षेत्रवाद, जातिवाद, धर्म के नाम पर, साम्प्रदायिकता के नाम पर, आतंकवाद के नाम और विकासवाद पर वोट मॉगने कि ट्रेनिंग होगी कि चुनाव के समय कैसे उन लोगों के भी पैर छुए जाते हैं जिनको दूर से भी देखने का मन नहीं करता। और जीतने के बाद कैसे जनता से पेश आना चाहिए।

यहाँ सिर्फ भारतीय स्तर के ही नेता नहीं होंगे बल्कि कभी-कभी अन्तरराष्ट्रीय स्तर के सबसे मक्कार नेताओं को भी बुलाया जायेगा। उदाहरण के लिए अमेरिकी पूर्व राष्ट्रपति बुश मेहमान अध्यापक होंगे जो बतायेंगे कि कैसे झूठा जाहिर होने पर भी मुस्कराया जाता है और अगर कोई भीड़ में से जूते मार दे तो किस गति और किस कोण से बचा जाना चाहिए! इसलिए देर न करें! इस आर्थिक मन्दी के दौर में नेतागिरी ही सबसे सुरक्षित धन्धा है जिसमें कम समय में तिजोरी भरने कि पक्की गारण्टी है।

**दाखिले के लिए योग्यता:** करोड़पति, बाहुबली या फिल्मी स्टार। या किसी नामी राजनीतिक परिवार से सम्बन्ध हो। पूँजीपति वर्ग की सेवा में उनके तलवे चाटने के लिए मध्य वर्ग के जो तथाकथित नौजवान अपनी नैतिकता, ईमानदारी, न्यायप्रियता, बहादुरी और तरक्कीपसन्दगी को बेच खाने का तैयार हों उनके लिए आधी सीटें आरक्षित हैं।

**एडमिशन फीस:** दस लाख (10,00,000 रु.) होगी क्योंकि नेता बनने की औकात किसी छोटे-मोटे आदमी की तो हो नहीं सकती।

**सीटें सीमित! जल्दी करें!!!**

## राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित नौजवानों के लिए कुछ ज़रूरी किताबें

शहीदे आजम की जेल नोटबुक	भगतसिंह	रु. 60
भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़		रु. 175
क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास	शिव वर्मा	रु. 10
भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति	बिपन चन्द्र	रु. 10
छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें	आह्वान पुस्तिका-1	रु. 10
आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष	आह्वान पुस्तिका-2	रु. 10
आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ	आह्वान पुस्तिका-3	रु. 10
ईश्वर का बहिष्कार	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15
लौकिक मार्ग	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15
धर्म का ढकोसला	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15
स्त्रियों की स्वाधीनता	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15

विहान आपके बीच आया है एक अँधेरे समय में अँधेरे के बारे में सच्चाइयाँ बयान करते और उजाले की उम्मीदों के गीतों को लेकर **विहान पेश करता है :**

## उजाले के दर्शक

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, मुक्तिबोध, शशिप्रकाश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पॉल रॉबसन के क्रान्तिकारी गीत

प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें :

जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ

फोन : (0522) 2786782

विहान, बी- 100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094 फोन (011) 65976788

क्या जुल्मों के दौर में भी गीत गाये जायेंगे  
हाँ, जुल्मों के दौर के ही गीत गाये जायेंगे।  
— बर्टोल्ट ब्रेष्ट

### Side A:

- 1 शहीदों के लिए — शशिप्रकाश
- 2 दरबारे-वतन में — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
- 3 आँधी के झूले पर झूलो — गजानन माधव मुक्तिबोध
- 4 साथियों! आगे बढ़ो — शशिप्रकाश
- 5 तोड़ो ये दीवारें — शशिप्रकाश
- 6 चलो फिर से मुस्कराएँ — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
- 7 जारी है — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
- 8 पैसा — विहान टोली

### Side B:

- 1 सिपाही का मर्सिया — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
- 2 रहबरे-मुल्को कीम बता — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
- 3 वीस्तीर्णों दुपारे — पॉल रोबसन
- 4 रउरा सासना के बाटे ना — गोरख पाण्डेय
- 5 दुनिया के हर सवाल के — शशिप्रकाश
- 6 इन्तेसाब — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
- 7 हम मेहनतकश — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
- 8 युद्धबन्दियों का गीत — शशिप्रकाश
- 9 इण्टरनेशनल — यूजीन पोतिफ़

### विहान टोली

मुख्य स्वर और इलेक्ट्रिक एवं अकाउस्टिक गिटार — अभिनव

स्वर एवं ढपली — तपीश तबला — नवकिशलय

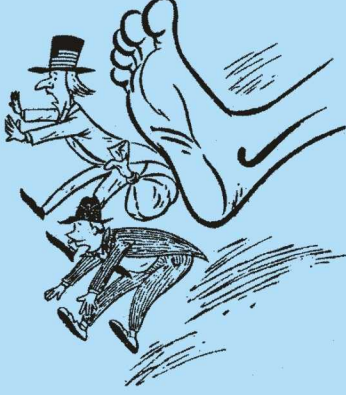
सहायक स्वर — पवन, प्रसेन, अजय, लता, योगेश, विजय और गौरव

**कैसेट (90 मिनट) - रु. 60, ऑडियो सीडी - रु. 125**

ईमेल: [vihaan@betarecords.com](mailto:vihaan@betarecords.com)

वेबसाइट: [www.betarecords.com/vihaan](http://www.betarecords.com/vihaan)

# खत्म करो पूँजी का राज लड़ो, बनाओ लोक-स्वराज!



हम पूँजीवादी संसदीय जनतंत्र की खर्चीली धोखाधड़ी, लूटतंत्र और दमनतंत्र को सिरे से खारिज करते हैं। हम पंचायती राज की कपटपूर्ण सरकारी नौटंकी को भी सिरे से खारिज करते हैं। समय के गर्भ में आज महत्त्वपूर्ण बदलाव के बीज पल रहे हैं। विकल्प के निर्माण के लिए उन्हें ही आगे आना होगा जो ठगे जा रहे हैं, लूटे जा रहे हैं और आवाज़ उठाने पर कुचले जा रहे हैं। इस व्यवस्था में जिनका कोई भविष्य नहीं है, उन्हें ही नयी व्यवस्था बनाने के लिए आगे आना होगा।

साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का एक-एक दिन हमारे लिए भारी है। यह घुटन, यह सड़ाँध अब जिन्दा आदमी के बर्दाश्त के क़ाबिल नहीं। हमें उठ खड़ा होना होगा और अपने जिन्दा होने का सबूत देना होगा, वरना आने वाली पीढ़ियों को इतिहास क्या बतायेगा कि हम क्या कर रहे थे जब देश ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हुआ था, तबाही के नर्ककुण्ड में झुलस रहा था?

यही कारण है कि हम विश्व पूँजीवादी तंत्र से नाभिनालबद्ध पूँजीवादी व्यवस्था को चकनाचूर कर पूरे समाज के आर्थिक आधार और ऊपरी ढाँचे का न्याय और समानता के आधार पर पुनर्गठन करने के लिए क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य का नारा बुलंद करते हैं। इस नारे का मतलब है – उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले सामाजिक वर्ग काबिज़ हों, फ़ैसले की पूरी ताक़त उन्हीं के हाथों में हो। इस नारे का सारतत्व है – ‘सारी सत्ता मेहनतकश को!’

...परिवर्तनकामी छात्रों-युवाओं को नये सिरे से अपने क्रान्तिकारी संगठन और जुझारू संघर्ष संगठित करने होंगे और उन्हें मेहनतकशों के संघर्षों से जोड़ना होगा। उन्हें शहीदेआज़म भगतसिंह के सन्देश को याद करते हुए क्रान्ति का सन्देश कल-कारखानों और खेतों-खलिहानों तक लेकर जाना होगा। क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों को एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के सांस्कृतिक कार्यभारों को पूरा करने में सन्तुष्ट हो जाना होगा। स्त्रियों की आधी आबादी की जागृति और लामबन्दी के बिना कोई भी सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं। मेहनतकशों, छात्रों-युवाओं, बुद्धिजीवियों सभी मोर्चों पर स्त्रियों की भागीदारी बढ़ाना सफलता की बुनियादी शर्त है। साथ ही स्त्री आन्दोलन को कुलीन मध्यवर्गीय दायरे, एन.जी.ओ. पन्थी सुधारवादी गलाज़त और निष्क्रिय विमर्शवादी अस्मितावादी वैचारिक विभ्रम के दलदल से बाहर निकालकर जुझारू संघर्षमुखी और व्यवस्था-परिवर्तनवादी दिशा देनी होगी।

**बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा,  
दिशा छात्र संगठन, देहाती मज़दूर यूनियन और नारी सभा  
द्वारा चलाये जा रहे**

**क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान की ओर से जारी**

सम्पर्क: नौजवान भारत सभा, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94, फोन: 011-65976788

ईमेल: disha.du@gmail.com